

मूल्य : ६.०० (6 00)

प्रथम सस्करण 1970

अपरा प्रिन्टर्स, कलकत्ता, मे मुद्रित

RAJASTHAN PRATINIDHI KATHAKAR

(An Antholog of Stories by the Story-writers of Rajasthan)



अनुक्रम

■

○ *कहानियां*



इन्तजार

डॉ० कृष्णबिहारी सहल

■

'कालका मेल ढाई घटे लेट है' सुनते ही मेरे तन-बदन में आग लग गई। मेरा शरीर ऊपर से नीचे तक झनझना उठा। इन लोगो ने तो घोषणा कर दी कि 'कालका मेल के आज ढाई घटे देर से आने की सम्भावना है' पर आखिर जो इस गाडी पर मुसाफिरो से मिलने आए हैं, उनका क्या होगा? रामनाथपुर में लौटकर जाना और फिर ढाई घन्टे बाद कालका मेल पर चाची से मिलने के लिए आना मेरे बस की बात नही। मेरा शरीर तन गया। रेलवे अधिकारियो के प्रति मैं घृणा से भर गया। मेरी मुट्ठियां भिंच गयी। आखिर क्या करते हैं ये लोग? जब देखो गाडिया लेट! क्या है यह व्यवस्था? यदि मेरे हाथ में यह सारी व्यवस्था आ जाय तो जो काम न करे उसे गोली से उडवा दू। देखें, कैसे सुधार नही होता, पर यहां किस-किस को रोयें? ऊपर से नीचे तक हरामखोर! अब मैं ढाई घन्टे तक कहां रहूँ? मेरे इस ढाई घन्टे की कोई कीमत ही नहीं।

मैंने चेहरे का पसीना पोछ डाला। नाक पर एक अजीब-सी चिकनाई जम गयी थी। रूमाल से उसे बार-बार रगडा पर जैसे कोई असर ही नही हुआ। इच्छा हुई, अभी स्टेशन सुपरिन्टेण्डेन्ट से जाकर झगड पडू। कालका मेल ढाई घन्टे क्यो लेट है? बुलाओ टाइम से गाडी अभी इसी वक्त। मैं ढाई घन्टे इन्तजार नही कर सकता। आखिर मैं भी तो आदमी हूँ। ढाई घन्टे का इन्तजार कोई

वेमतलब कैसे करे ? हो सकता है एस०एम० मुझे पुलिस के हवाले कर दे। पुलिस मेरा क्या करेगी ? सीधे रेलवे मत्री को फोन कर दू गा और भूख हड़ताल पर बैठ जाऊगा, ऊपर से नीचे तक तहलका मच जायगा। एस० एम० उलटा मेरी खुशामद करेगा। उसे क्या पता, एक लेखक की क्या हस्ती है! मैं लेखक हू—पर साथ मे सरकारी नौकर भी तो हूँ। सरकारी नौकर होने का अर्थ दास तो नहीं होता। नहीं, मुझे इस व्यवस्था का विरोध करने का पूरा अधिकार है। यदि सरकार इसे विरोध माने तो मेरा त्यागपत्र ले ले।

ढाई घन्टे में कैसे काटू ?—खडर...खड़र...खच्च...खडर...खडर...हटना वाबूजी ! कितना कर्कश स्वर है ? दो लगेज-पोर्टर एक ठेला धकेले लिये जा रहे हैं। ठेले का खड़र...खडर...खच्च कानो को चीरे दे रहा है। इच्छा हुई इन दोनो पोर्टरो को चाटे मार दू और इस ठेले को प्लेटफार्म के नीचे डाल दू। मेरी नसें फिर तन गयी।...मुझे एक ओर हट जाना पड़ा।

अब ढाई घटे का समय तो कैसे भी काटना ही होगा। सामने वाली बैंच पर दो-तीन आदमी बैठे थे। मैं इस स्थिति में नहीं था कि किसी के साथ बैठ सकूं। और फिर ये मनहूस शक्लें। इन्हें बैंच से उठाकर फेंक दूं ? पर क्यो ? पता नही मैं क्या चाहता था। मेरे अन्दर क्या चीज थी जो मुझे बेचैन किये दे रही थी। चाची को भी आज ही आना था। कालका से मुगलसराय जा रही है। जाना है तो जाए, मुझे क्यों परेशान किया। आध घटे मिल लेगी तो क्या हो जायगा ? वुढिया ने लिख दिया मुझे स्टेशन पर मिलो। कहते-कहते वर्षो बीत गये। अभी मेरे लायक लड़की ही नहीं मिली। मुझसे कहे मैं बीस लाकर खड़ी कर दू। पर ना, अपने आप ही पसद करेंगी। यह पता नही कि जिसे वे पसद करें, जरूरी नही कि मैं भी उसे पसंद कर ही लू। एक बार लौटने की इच्छा हुई। शिकायत करेंगी तो लिख दूगा कि मुझे चिट्ठी मिली ही नहीं। डाक-व्यवस्था रेल-व्यवस्था से कौन अच्छी है! पर शायद वे अपने साथ कुछ खाने को लेती आयें। और कुछ नहीं तो कोई कपड़ा तो जरूर ही लायेंगी। इसलिए लौटना भी ठीक नहीं था।

पर सवाल ढाई घन्टे काटने का था। मैंने प्लेटफार्म पर नजर दौडायी—दूर तक वही किचर-पिचर-चिल्लपो। घिनौनी शक्लें और भद्दी आवाजें। मन वितृष्णा से भर गया। एक असहनीय वदवू से सर चकराने लगा। मैं प्लेटफार्म पर टहलने लगा। आगे गया तो पाया कि प्लेटफार्म के सिरे पर एक बैंच खाली है। मैं जल्दी से वहाँ पहुँच गया तो पाया कि बैंच के ऊपर लगा पखा बद है। इसीलिए

तो यह बैंच खाली है। इस वक्त सैकडो बिजली वाले ड्यूटी पर होगे। पर इस पखे को देखने वाला कोई नही। किसी को क्या गरज पडी है ? पर मैं किस-किस से लडू ? मैंने अपने अन्दर एक तनाव अनुभव किया। फिर भी मैं बैंच पर बैठ गया। गनीमत यही थी कि उस बैंच पर और कोई नही था। मैंने बैंच के किनारे को जकड कर पकड लिया। मेरा तनाव कम नही हो पाया था। उसी तनाव में मैं पसीने मे तरबतर हो गया। धीरे-धीरे शिथिलता आई तो मैंने पसीना पोछ डाला।

अभी सवा दो घटे बाकी थे। मैं बैंच की बैक से कमर टिका कर अधलेटा हो गया। मैंने प्लेटफार्म की ओर देखा—उधर से एक लडकी आ रही थी। लडकी—हा काफी खूबसूरत। चुस्त पोशाक पहने। नाप-नाप कर कदम रखती हुई। हाथ में सादा किन्तु कीमती पर्स। बालो का जूडा घोसलानुमा। रग एकदम साफ। नाक-नक्श काफी तीखे और भोले। वह पास आई। मैं उसे घूर कर देखने लगा—बहुत सुन्दर लगी मुझे तो। मैंने चाहा कि वह मेरे साथ इसी बैंच पर आ बैठे पर वह नही बैठी। मेरे सामने से आगे निकल गयी। उसने मेरी ओर देखा तक नही। अब उसकी पीठ मेरी ओर थी। कुरते की गोलाई से दिखती कमर की गोलाई अत्यन्त आकर्षक। कुरते मे ढले नितम्ब बहुत मादक। चलते समय नितम्बों के भरे मांस का हिलना—मेरे लिये यह सब असह्य था। मैं उसे देखता रहा।

थोडी दूर जाकर वह फिर लौटी। मैं उसे अपलक देखता रहा। उसके उरोज नुकीले, पुष्ट एव पारदर्शक दुपट्टे के नीचे हिल-हिल जाते थे। आखिर उसने मेरी ओर देख ही लिया। मुझे देखकर वह खडी हो गयी। मेरी और उसकी आँखें मिल गयी। बहुत बडी-बडी आंखें, कजरारी आँखें—एक अतृप्ति से भरी आँखें! मुझे लगा उसकी आँखों से एक तीव्र प्रकाश की किरणें फूट निकली है। वे आँखें नही सर्चलाइट हो गयी है। सर्चलाइट की तेज रोशनी मे मेरी आँखें अपने-आप बन्द हो गयी। मैं उस रोशनी में डूब गया—एक अनन्त प्रकाश में जहाँ......।

'आप कहाँ रहते हैं ?' उसका प्रश्न।

'रामनाथपुरा', मेरा उत्तर।

'क्या करते है ?'

'लेखकी और क्लर्की।'

'आप लेखक भी है ?'

'हाँ ।'

'क्या लिखते है ?'

'कहानी ।'

'गुड !'

'आप ?' मेरा प्रश्न ।

'मैं मिराण्डा में हूँ—फाइनल ईयर में ।' उसका उत्तर ।

'आपका नाम ?' उसका प्रश्न ।

'इस समय सु समझ लीजिए ।' मेरा उत्तर ।

'गुड...मुझे यह नाम पसद आया ।'

'आपका नाम ?' मेरा प्रश्न

'मुझे किसी भी सख्या के नाम से पुकार लीजिए । मेरी नजर में आदमी और सख्या मे कोई अन्तर नही है। इसलिए नाम-वाम का मेरे लिए कोई अर्थ नहीं ।' उसका उत्तर ।

'आप काफी विचित्र मालूम पडती है !'

'जी, आपको पसन्द आई···थैंक्स···पर देखिए, इस फारमैलिटी में मेरा कोई विश्वास नही है । आप मेरी तारीफ करें तो मुझे उससे कोई खुशी नही होगी ।'

'लेकिन मैं आपकी तारीफ क्यो करू ?'

'फाइन—लगता है, आप भी समय को समझते है ।...आप यहां क्यों बैठे है ?'

'कालका मेल का इन्तजार है ।'

'किससे मिलना है ?'

'मेरी चाची आ रही है ।'

'क्या उनसे मिले विना नहीं चलेगा ?'

'नही, ऐसी तो कोई बात नहीं—पर आप...?'

'मेरे मामा भी उसी गाडी से आ रहे है । वे कानपुर जा रहे है । मुझे मिलने के लिए लिख दिया है । अब बताइये, क्या फायदा होगा मिलने से ? महज समय की बरवादी । तिस पर कम्वख्त गाडी ढाई घटे लेट ! आप क्या अपनी चाची से मिलने के लिये वाकई वेताब है ?'

'कतई नही ।'

'ब्रैवो . ब्रैवो...आखिर इस बनावटी जिन्दगी को कब तक ढोते रहेंगे ? मुझे यह सब अच्छा नही लगता । वी शुड बी क्वाइट प्रैक्टीकल एण्ड आबजैक्टिव ।'

'जी ।'

'अच्छा चलिए, आपके कमरे पर चलते है । स्कूटर ले लेते है । अभी दो घटे हैं—लौट आयेंगे ।'

'लेकिन . '

'आप हैं तो अकेले ही न ?'

'हां हू . तो...'

'फिर क्या है, चलिए न ?'

उसने मेरा हाथ पकड कर उठा दिया । मैं अनियन्त्रित भाव से उसके पीछे चल दिया । बाहर आकर स्कूटर लिया । हम स्कूटर में बैठे । दूसरे क्षण हम दोनो मेरे कमरे मे थे । उसने स्कूटर वाले को पैसे देकर कहा कि वह इन्तजार करे, हम लोग अभी फिर स्टेशन चलेंगे । उसने कमरे के अन्दर से चिटकनी लगा दी ।

'अब ?' मेरा प्रश्न ।

'ट्राई टू बी प्रैक्टीकल एण्ड आबजैक्टिव', कहते-कहते वह अपना कुर्त्ता उतारने लगी । 'तुम यू ही खडे रहोगे ? हरी अप . ।'

'और हां, जरा पखा तेज कर दो ।'

मैंने पखा तेज कर दिया ।

....

'तुम काफी मजेदार आदमी निकले ।'

'हू ..।'

'चलें न ?'

'हा...पर ठहरो ..मैं जरा बाहर देख लू...।'

'क्या देखोगे ..बी बोल्ड...इस सबके बाद भी तुममें कायरता दिख रही है !'

'नही ऐसी तो कोई बात नही...'

'है कैसे नहीं । मेरी समझ मे यह सब नही आता । हम क्यो समाज से डरते

है ? अब देखो न, मैं पिछले छ महीने से अतृप्त थी। इसी चक्कर में रही, कुछ डरती भी रही। आज तुम मिल गये।.. मैं अपने-आपको कितना रिलैक्स्ड महसूस कर रही हू। अन्यथा तनाव का एक बोझ चढा रहता था। इस समय मैं ठीक हू। तुम्हारे साथ मैंने अपना सारा तनाव दूर कर लिया। बताओ, इसमें क्या बुरा कर दिया मैंने ?'

'देखो, यू तो मेरे लिये भी इन सबका कोई अर्थ नही।'

'फिर क्यो डरते हो ?. आओ चलें।'

बाहर स्कूटर खडा था। हम दोनो उसमें बैठ गये। स्कूटर स्टार्ट हुआ। घड़, घड, घड...।

'जरा आप सीधे बैठ जायेंगे ? मैं भी बैठ जाऊं।'

सामने वही लडकी खडी थी। अब मुझे मालूम हुआ कि मैं बैंच पर लेटा हुआ था। मैं पसीने में तरबतर था। उसको आवाज से जैसे मेरी चेतना लौट आई। सर्चलाइट का प्रकाश मिट गया। मैं बैंच पर था जो कोई आरामदेह नहीं थी। वह मेरे सामने खडी थी। ठीक वही लडकी।

'हां, हां, आइये।' मैंने जल्दी से कहा और मैं बैंच पर बैठा हो गया। वह लड़की एक किनारे पर बैठ गयी।

'आप कहा जाएंगी ?' मैंने प्रश्न किया।

'मैं कहा जाऊगी, आपको मतलब ? ओह, कम्बख्त कितनी लेट है !' उसके स्वर मे झुंझलाहट थी।

'मैं तो अपनी चाची से मिलने आया हूं।'

'ऐसी गर्मी मे क्या मिलना ?...सब बेकार।' वह खीझ रही थी। उसने अपने होठ दांतों से काट लिये। उसका चेहरा क्रूर हो चला था। वह अपने दोनो हाथो की अगुलियों को फसाकर मोड रही थी। उसने मेरी ओर देखा। उसकी आंखें काफी बड़ी और गोल थीं। उसकी आंखें लाल थीं। मैंने भी उसे देखा...मैं उसकी आंखों से निकलने वाली सर्चलाइट की प्रतीक्षा करने लगा...अपलक...मौन !

■

हँसने वाली लड़की

शुभू पटवा



शायद आपने भी देखा होगा उस लडकी को। मैं प्रतिदिन देखता हू। वह एक ही खिड़की में बैठी वाहर जो कुछ हो रहा है उसे देखती रहती है। वह हँसती रहती है एक विद्रूप हँसी। मैंने बहुत प्रयास किया है उसकी हँसी के आशय को समझने का। वह हँसती रहती है और कभी-कभी तो ठहाकों के साथ हँसती है। मैं जहां भी जाता हू, जिस शहर में जाता हू मुझे वह लड़की नजर आती है।

एक बार मैंने मन-ही-मन पूछा था, 'ए लडकी, यह क्या बद्तमीजी है ? हर समय हँसी और वेशर्मी', लेकिन प्रत्यक्षत. उसे कुछ भी कहने का साहस मुझे प्राप्त नहीं हो रहा है। आप भी आश्चर्य करेंगे, जब उसे देखेंगे तब। उसकी दृष्टि दूर क्षितिज पर टिकी रहती है। या वह भी शायद नहीं। मैं उस लडकी को कई वार बहुत देर तक देखता रहा हू। पर मुझे लगता है कि वह मुझे नही देख रही है, किसी को भी नहीं देख रही है। उसकी आंखें किसी ओझल वस्तु को खोजती नजर आती है। कभी उसका स्वरूप वेजोड था, पर आज उसका अवमूल्यन हो चुका है। अपने ही घर मे उसकी साख गिरती जा रही है और शायद हर क्षण उसकी चीखें, अपने ही हाथो जन्मायी हुई खीज और आक्रोस तथा हर तीसरे पहर अपने अस्तित्व का इन्द्रासन टूट जाने

के भय से वह चिंतित है। इसलिए उसकी प्रज्ञा, सूझ-बूझ इतनी कुठित हो चुकी है कि वह बाहर के व्यक्ति को मुस्कानो मे बांधना चाहती है, हँसती रहती है। पर मैं जानता हू कि उसकी हँसी में विद्रूपता है, एक विडम्बना।

मैं उस लडकी के परिवार से भी बहुत परिचित हू। आपका परिचय भी है उस परिवार से। मेरा आना-जाना भी प्राय रहता है उसके यहां और मैं जानता हूं कि आप भी प्राय वहां जाते है। बल्कि हम सभी उस एक परिधि में ही तो रहते है जहां उस लडकी का घर है। उसके घर में जब कभी मैं उसके सामने हो जाता हू तब भी वह हँसती रहती है। वही विद्रूप हँसी। मैं सोचता हू कि वह पागल है, लेकिन यह गलत है। क्योकि जब भी उसके यहां कोई मेहमान आता है तो वह बहुत गम्भीर, बहुत शिष्ट हो जाती है। जिस देश से वह आते है, उसी देश की सस्कृति की प्रतिकृतियां वह अपने घर में भी दिखाती है और तब वह यह कहते अघाती नही है कि हम कितने निकट हैं, कितना अपनापा है हममे-आपमें। पर उसका खोखलापन किसी भी समय बगावत का सिर उठा लेगा, हर क्षण इस सम्भावना से वह भयभीत रहती है।

उनकी अगवाई मे वह घर के लोगो को ऐसे महत्वपूर्ण निर्देश देती है जिन्हें सुनकर मैं तो क्या जिस किसी ने भी उसे देखा है, वह आश्चर्य में पड जायेगा। तब वह अपने नगर के चर्चित स्थानो पर, गौतम, गाधी और नेहरू की समाधियो पर ले जाकर उन्हें अपना महत्व समझायेगी। और उनके नाम पर अपना सिक्का चलाने का आग्रह करेगी जो मैं जानता हू कि अब दुराग्रह मात्र रह गया है। वे नाम घिसते-घिसते धुधले पडते जा रहे है और उनका अस्तित्व औपचारिक श्रद्धाजलि अर्पित करने मात्र तक रह गया है।

वह लडकी तब अपने उन अभ्यागतो को ऐसे वैभवशाली स्थानों पर ले जाने का प्रबन्ध करेगी जिन्हें देखकर प्रवासी सचमुच विश्वास कर लेंगे कि वैभव की देवी का जन्म-स्थान यही है। पर मैं जानता हू कि उनके अन्तर का एक कोण यही सोचता होगा कि इन्हें देखने से लगता है कि 'खण्डहर बोलते है इमारत कभी बुलन्द थी।'

तब वह हँसने वाली लडकी विद्युत की चकाचौंध से गुम्फित अपने ड्राइग-रूम में सजे-सजाये, हाथ जोडे मूर्तिवत नौकरो की कतारनुमा नुमायश दिखाते हुए ऐसा सुन्दर डिनर देगी कि अतिथि को लगेगा वह स्वर्ग में पहुच गया है। और इन सब के बाद वह किसी ऐसे सधि-पत्र पर, किसी ऐसे इकरारनामे पर जो

वह अपने हित में समझती है, उस अतिथि से हस्ताक्षर करवा कर अपने श्रम को सफल समझेगी। लेकिन मैं उसे बहुत निकटता से जानता हू, इसलिए आपको कहता हू कि वह लडकी बहुत भोली, नेकदिल है। वह अतिथि की कुटिलता को नहीं समझ पाती और उसकी शर्तो पर अपने दस्तखतो की मोहर लगा देती है, जिसका परिणाम मैं अब तक उसके विपरीत ही देखता आया हू।

मैंने उस लडकी को कई बार उदास होते भी देखा है। उसकी उदासी का मैंने जब पता लगाने का प्रयत्न किया है तब मुझे ज्ञात हुआ है कि उसके यहां खाने की सामग्री का अभाव हो गया है। किसी बर्तन में पडे मुट्ठी भर गेहू के दानो को जब वह देखती है तो उसे लगता है कि उसकी आखो में सैकडो फुसियां उग आई है और अब वे रडक रही है। वह अपने घर के कुल व्यक्तियो को गिनती है और फिर मुट्ठी भर गेहू के दानो को देखकर सोचती है एक आदमी के हिस्से एक दाना भी नही पडता। ऐसे दिनो में उसकी हँसी इस प्रकार से गायब होती है जैसे हँसना उसने सीखा ही नही।

मैं उसकी हँसी, उसकी उदासी और उसकी गम्भीरता को उसकी विवशता समझता हू। एक ऐसी लाचारी जिसमें आदमी को कुछ भी करना पडता है। उसकी वह उदासी उसी दिन समाप्त होती है जब वह रेडियो पर सुनती है अमेरिका से गेहू का जहाज लद गया है। मैं उस लडकी पर बहुत क्रोधित होता हू कि वह अपनी रगो मे विदेशी रंगत को भरपूर स्थान दे रही है, लेकिन मैं उसे कुछ कह नही सकता क्योंकि वह इस तरह हँसती है कि मैं भयभीत हो उठता हू।

एक बात जो शायद आप नही जानते। वह लडकी पगु है और चल-फिर नहीं सकती। यह कैसे हुआ इसका भी आपको पता होना चाहिए। यह हँसने वाली लडकी अपनी सुन्दरता के लिए विश्व में बेजोड थी। हर आदमी इस पर मोहित था। लडकी मे कुटिलता नाम की कोई चीज नही थी इसीलिए यह हर एक से हँस-बोल लेती थी। पर एक सेठ ने, जो अपने वैभव के अहम् से दबे जा रहे थे, इस लडकी के साथ विश्वासघात किया। उसने लडकी से उसके घर मे शरण मागी थी, पर कालान्तर मे उसी शरणार्थी ने इसके पांवों मे बेडियां डाल दी। अब इसकी बेडिया तो टूट चुकी है पर इसके पाव शक्तिहीन हो गये है। वह शरणार्थी जब यहा से भागने लगा तो उसने बेडियां काटने के बहाने इसके पांव में नस्तर लगा दिया। लडकी के वारिशो ने वर्षो तक उपचार करवाया, बेहिसाब पैसा खर्च किया पर टांगें नही मिली। वह पंगु

ही रही। उसकी इस विद्रूप हँसी मे उसकी विवशता झलकती है। एक विद्रोह दृष्टिगत होता है। वह अपनी कमजोरी को औरो से छिपाये रखने के लिए हर समय हँसते रहने का प्रयत्न करती है। कभी-कभी वह बहुत दुखी हो जाती है, अपनी टागो पर जब उसकी दृष्टि पडती है, तब वह पागल-सी हो जाती है और ठहाको के साथ हँसती है।

इस लडकी की अपनी कोई भाषा नही है। इसलिए इसके अपने लोग भी इसकी बात समझने मे असमर्थ है। जब वह यह सोचती है कि उसका अपना घर उसके लिए अजनबी बनता जा रहा है तो वह पीड़ित हो उठती है। पथराई आखो से, आहत-सी वह इधर-उधर झाकती है तो हर आदमी उसे काटने को दौडता-सा लगता है। उसके घर में बुराइयों ने इस प्रकार से स्थान बना लिया है कि उसकी गीता और रामायण का रोज सुबह का पाठ उनके लिए अब नसीहत नही बेकार का कार्य हो गया है। उनकी नैतिकता का आकार जो स्वरूप ले रहा है वह गीता और रामायण के अस्तित्व को कूडे में पडे चिथड़े-सा समझते है, जिसके पास से भी गुजरते समय दृष्टि को कही और टिकाना पडता है। वह सोचती है कि उसकी गीता और रामायण उसके लिए मुसीबत बन गयी है, उसके पगुपन का मखौल।

वह लडकी जब अपने घर में झाकती है तो उसे एक खोखलापन नजर आता है, पर खिडकी के उस पार जब झाकती है तो उसके चेहरे पर हँसी की रेखाए उभर जाती है। मैं जानता हू कि वह कितनी विद्रूप हँसी है। यह कितनी बडी विडम्बना है कि अपना खोखलापन उसे ज्ञात होते हुए भी वह अपने को सभ्य, शिष्ट और वैभवशाली कहलाने मे इन्कार नही करती। मैं सोचता हू कि वह छलती है या छली जाती है। शायद दोनो ही सही हों पर यह जो उसका खोखलापन बढता जा रहा है क्या कभी उसे समाप्त नही कर देगा ? लेकिन बेचारी क्या करे, वह पगु है और बैसाखिया जिन पर विदेशी मार्का है, अब पुरानी हो गई है। वह कगार पर खडी देख रही है कि उसे किधर चलना है, पर उसकी विवशता यह है कि उसने नई बैसाखी का निर्माण नही किया और पुरानी बैसाखी उसके विश्वास को खडित कर चुकी है। मैं सोचता हू कि यह उस लडकी की विवशता है या मेरे इस राष्ट्र की, जिसकी मुस्कान में भी कभी मैंने स्वाभाविकता नही देखी। वह भी इस लडकी की भांति हँसता रहता है— एक विद्रूप हँसी !

●

एक मार्मिक संस्मरणात्मक कथा

रोज एक जोड़ा नई धोती

निरंजनलाल गोयनका

■

भइया की बीमारी मे भाई मदनलालजी एक महीने कलकत्ता रहे थे। भाई-साहब का सोना-बैठना तो भइया के पास ही होता था, किन्तु ताऊजी के विशेष आग्रह से उनका नहाना-धोना, खाना-पीना उन्ही के यहाँ होता। ताऊजी अत्यधिक विशाल-हृदय थे। उन्होने अपने मुनीम को आदेश दे रखा था, 'इस बात का ध्यान रखना कि मेरे घर में मदन अपनी धोती न पहन ले, वह जब तक यहाँ है, रोज एक जोडा नई धोती निकालो, और दोनो समय उसे पहनने के लिए नई धोती दो। जो धोती वह एक बार पहन ले, वह उसे दुबारा मत देना, बल्कि इस्त्री करके रखते जाना। जब वह देश जायेगा, तो उन्हें अपने साथ लेता जायेगा।'

एक वार मुनीमजी धोती निकालना भूल गये। जव भाईसाहव नहाने गये, तो धोती की जरूरत पडने पर नौकर वगलें झाँकने लगा। दोनो भाई भी सामने ही वैठे थे। छोटे भाई, जो भगतजी के नाम से पुकारे जाते थे, वोल उठे, 'अरे, देखता क्या है ? वह धोती टँगी हुई है, दे क्यो नही देता ? मदन कव तक गीली धोती पहने खडा रहेगा ?'

छोटे भाई की वात सुनकर हजारीमलजी कहने लगे, 'रामचन्दर, तू तो वडा लोभी मालूम पडता है ! मैं तो तुझे भगत समझता था, लेकिन आज तो भाई, तेरी भगताई मे धूल पड़ गयी ! मदन को मदन की ही धोती पहनने को कह दिया ?...और वह भी हमारे घर में ?'

रामचन्द्रजी वोल उठे, 'भाईजी, ये सारी धोतियां तो हमारे ही घर की है। इसकी तो सिर्फ एक ही धोती है, जो इसने पहले दिन वदली थी।'

हजारीमलजी वोले, 'इसीलिए तो मैं कहता हू कि तेरी वुद्धि छोटी है ! जिस धोती को मदन ने एक वार पहन लिया, वह धोती उसकी हुई, या हमारी ?'

इतने में मुनीम भी आ गया। फिर तो वे मुनीमजी पर वरस ही पड़े। कहने लगे, 'धोती निकालकर क्यो नही रखी ? मुझे शक है कि तुम दोनो की इसमें साठ-गाठ है, जिसके फलस्वरूप धोती नही निकाली गयी। ध्यान रखना, जव तक मदन यहा रहे, रोज नया जोडा निकालकर देते जाना। पहले ही दिन तुम्हें यह समझा दिया था, फिर मेरी बात का उल्लंघन कैसे हुआ ? ये वातें मुझे वरदाश्त नही। वडे भाग्य से भानजे लोग घर आते है।'

■

इन्ही दिनो पितृ-पक्ष पड़ गया। ताऊजी के पिता का श्राद्ध आया। उन्होंने भाईसाहव से कहा, 'आज वडा श्राद्ध है। तुम ठीक वारह वजे आ जाना। देरी न करना। तुम्हारे आने पर ब्राह्मण-भोजन होगा।'

भाईसाहव ने इस निमंत्रण की कुछ विशेषता नहीं समझी, और समझते भी तो कैसे, क्योंकि हमारे वहिन ही नही हुई, फिर भानजा कहा से आता ? कोई वुआ भी न थीं, न वड वुआ ही थीं। इसलिए ठीक समय पर पहुचने की चेष्टा करते हुए भी वे कुछ देरी से पहुचे। इधर ब्राह्मण सव आ चुके थे, तर्पण हो चुका था, और भोजन की तैयारियां भी हो चुकी थीं। ब्राह्मण लोग खाने के

लिए छटपटा रहे थे, लेकिन जब तक भाईसाहब वहां नही पहुंचे, तब तक उनको भोजन नही परोसा गया। ताऊजी ने साफ-साफ कह दिया, 'पडितजी, मैं मदन को तो आप लोगो के साथ ही बैठाऊंगा। पित्रेश्वर उसके खाने से विशेष प्रसन्न होगे।' आखिर भाईसाहब के पहुँचने पर ही सबको भोजन कराया गया।

तब और अब में बहुत बडा फर्क आ गया है। आज समाज मे पैसो को ही प्रधानता दी जाती है जब कि उस समय एक-दूसरे के प्रति प्रेम-भाव के सम्बन्ध की ही प्रधानता थी। एक भाई धनाढ्य होता और दूसरा गरीब, तो दोनों के मिलन में उस समय धन व्यवधान न बन पाता था।

आज यदि आर्थिक दृष्टि से एक कमजोर भाई अपने सगे किन्तु समर्थ भाई के यहां चला जाता है, तो उसे अपने स्वागत मे तिरस्कार की गध का अनुभव हुए बिना नही रहता। बाल-बच्चो और स्त्रियो में तो यह दुर्भावना स्पष्ट रूप से झलकने लगती है। अपने पैसे के नशे मे उनको भला किसकी परवाह!

लेकिन उन दिनो जब कभी किसी व्याह-शादी में या अन्य किसी अवसर पर हमारे माता-पिता को कलकत्ता आना पडता, तो इनके घर में चारो ओर उल्लास छा जाता। हजारीमल हमारे पिताजी को साथ लिये बिना कभी भोजन ही नही करते थे। वे इस बात का बडा ध्यान रखते कि कही हम लोगो के मन में यह विचार न आये, कि हम अपने से अधिक उच्च-स्तरवाले लोगो के घर रह रहे है। जब कभी शादी-व्याह या किसी अन्य विशेष अवसर पर मेरी माताजी इनके यहा आती, तो मेरे पिता की मामीजी मेरी मा से कहती, 'देख बेटा, तू तो मेरी ननद की जगह है। किसी तरह का सकोच न करना। जो तेरी पसद की चीज हो, मांग लिया करो।'

जब मेरी माता की विदाई के दिन नजदीक आते, तो वे अपने बक्से खोल देती, और कहतीं, 'तेरो पसन्द की जो चीजें हो, सो ले ले, और जो मँगाना हो, सो मगा ले। अपने घर जाकर तो तू मगाने से रही। कभी फर्माइश भेजती ही नही। मैं ही अपने मन से कुछ भेज दूँ, तो ठीक है, लेकिन यह भी तो पता नहीं लग पाता कि मेरी भेजी चीजें तुझे पसन्द भी आती है, या नही?'

मेरी मा कहतीं, 'यहा से योही इतना सामान जाता रहता है, कि साल भर खर्च करके भी बच ही रहता है। मामीजी, मैं आपसे ही नही मागूगी, तो किससे मागूगी?'

मामीजी कहती, 'तू मागती तो है, लेकिन लड़कर नही लेती। तेरे मागने में इतनी ही कसर रह जाती है।'

मा कहती, 'लडना तो तब पडे, जब आप देने में कसर रखें। और वैसे तो मामीजी, लालच का कोई अन्त ही नही।'

मामीजी कहती, 'बीनणी, तू है सकोची! लेकिन खैर, कोई बात नही।'

सारी बात का निचोड यह कि मामीजी हमारी माताजी को इतना अधिक आदर-मान देती कि उनके मन मे यह बात आ ही न सके, कि वे पैसेवाले है, और हमारा स्तर उनसे न्यून है। एक वह भी जमाना था भारतवर्ष में, जब स्त्री एव पुरुष वर्ग प्राय साक्षर तक न थे। आज का व्यक्ति समान स्तर पर ही मिलना-जुलना पसन्द करता है। असमान स्तर उसे काटने-सा दौड़ता है, उसकी नाक-भौं सिकुडे बिना नही रहती।



मार्च और गालिब

शारदा अग्रवाल

■

मार्च ·····कैलेण्डर·······दीवाल··· ··तारीखें··· · एक-दो-तीन······ और इकत्तीस।

मैंने उधर से मुह हटा लिया था। नही, इस महीने की कोई तारीख नही, कोई कैलेण्डर नही। सारा महीना एक जैसा है, बिल्कुल एक-सा। इस महीने की सिर्फ पहली तारीख है और उस पहली तारीख में ही सब कुछ डूब गया है। पूरा का पूरा महीना तो यू ही बेकार रबड की तरह खिंचता चला जा रहा है। कुछ भी तो ऐसा नहीं जो इस खामोश, पतझडों से भरे वीरान महीने को बदल सके!

समझ में नही आता कि आखिर इस पत्र पर कौन-सी तारीख लिखू ?

[मुझे तो यही याद है कि वह पहली तारीख को गया था।]

जवाब में ढेर सारे कागज के छोटे-छोटे टुकडे जमीन पर इधर से उधर नाचने लगे—हल्के नीले रग के। हर टुकडे पर काली स्याही से लिखे कुछ अक्षर थे,

शब्द थे, पर अब उनका कोई अर्थ नही था। सुबह से जाने कितने पत्र उसके नाम लिखे और फाड डाले। यह क्रम पिछले कई दिनो से चल रहा था। हर बार अपने लिखे हुए पत्र के टुकडे करते समय लगा था कि किसी खिले हुए फूल की एक-एक पखुडी नोच रही हूँ, उसे मसल रही हूँ और हर बार पत्र लिखना शुरू करते समय सोचा था कि अब उसे पत्र नही लिखूंगी, मैं उसे पत्र नही लिख सकती, पर थोडी देर बाद अपने आप ही पत्र लिखना शुरू हो जाता और मुझे लगता था कि यह तो बेवकूफी की हद है जो मुझको उसे पत्र लिखने मे इतना सोचना-विचारना पडता है। यह भी कोई तुक है कि मैं उसे पत्र न लिखू ? उसके और मेरे बीच क्या कभी ऐसा हो सकता है ? मैं और वह क्या अलग-अलग है ? सुबह बातें न करने पर पूरा दिन और शाम को न मिलने पर सारी रात बिगड जाती थी हम दोनो की। बीच मे कही भी कुछ है, ऐसा तो कभी लगा नही था। फिर अब ये चार दिन इस तरह बीत जाने पर क्या वह मेरे लिए कोई और हो गया है ? या मैं ही बदल गई हूँ ?

कुछ भी तो नहीं हुआ ! जाने के दिन भी उसने दस बार पूछा होगा कि तुम्हे कैसा लगता है ? हर कुछ नया गुजरने के बाद उसका रटा-रटाया प्रश्न होता था कि कैसा लगता है ? उसके इस सवाल से मैं तग आ गई थी। ट्रेन छूटने के कुछ ही मिनट पहले उसने फोन करके पूछा था कि अब कैसा लगता है ! मैंने सोचा था कि कहीं यह प्रश्न-पत्र तो नहीं हो गया है ? और आज यही प्रश्न मेरे भीतर कही बहुत गहरे कुलबुला रहा था। उठने के बाद से ही आज की सुबह कुछ अजीब-सी लगी थी। अच्छा या बुरा जैसा कुछ भी नहीं लग रहा था। जैसे मैं रात-दिन सोचनेवाली कोई मशीन हो गई हूँ जिसके हाथ-पैर कभी-कभी हिलते हैं, मुँह चलता है, आँखें देखती है। और अचानक मन में आया था कि उससे पूछूं कि तुम्हें अब कैसा लगता है ? तुम क्या सोचते हो ?

और उसके बाद तो जैसे मुझ पर नशा-सा सवार हो गया, किन्तु पत्र के समाप्त होते ही मुझे याद आता कि उसने कहा था तुम मुझे पत्र मत लिखना, तुम्हारे पत्र मुझे कमजोर बना देंगे। और वह पत्र टुकडो मे बदल कर फर्श पर बिखर जाता था।

मैंने फिर दीवाल की ओर देखा मेज पर रखे अधूरे पत्र की ओर देखा और झटके से उसे उठाकर मुट्ठियो में भीच डाला। पत्र में सैकडो सिकुडनें पड़ गई और वह मेरे हाथ से छूटकर कोने मे लुढकता हुआ जाकर रुक गया।

मैंने सोचा कि इससे अच्छा होता कि मैंने कविताएँ लिखी होती। कम-से-कम वे इस अकाल मृत्यु से तो बच जाती! मेरी अपनी ही नजरो में वे इतनी अवैध तो नही रहती। एक-एक शब्द, एक-एक वाक्य मैंने कितने मन से लिखा था। क्या वह इस पत्र को पाकर सचमुच कमजोर हो जाता? उसने क्यो मना किया था?

फिर वही मार्च ··· कैलेण्डर · · तारीखें ·· और हल्के नीले रग के कागज के टुकडे। मुझे लगा कि थोडी देर मे शायद उसे फिर से नया पत्र लिखना शुरू कर दूगी। और धीरे-धीरे बिखरे हुए छोटे-छोटे हल्के नीले कागज के टुकडो का इसी तरह बहुत बडा ढेर बन जायेगा और सारा कमरा उनसे भर जायेगा। पखे की तेज हवा में वे पतझड के पत्तो की तरह मेरे चारो ओर चक्कर काटने लगेंगे और मैं सचमुच उस ढेर में दब जाऊँगी ·।

मेरे कमरे में मार्च घुस आया है ·· पहली तारीख · पतझड ··.. पत्र·· टुकडे। मैं झटके से उठ खडी हुई। रिसीवर उठाकर कुछ नम्बर डायल किये और बाहर निकल पडी।

हवडा स्टेशन की बडी घडी में ४ बजकर ४० मिनट हो रहे थे। और इसका मतलब यह था कि मैं काफी पहले पहुँच गई थी। अब कम-से-कम २० मिनटो तक (जो २५ और ३० भी हो सकते थे) मुझे केवल इन्तजार करना था क्योकि किसी भी हालत मे सिनहा इससे पहले नही आ सकेगा। मुझे इस विचार से ही बोरियत महसूस होने लगी थी और कॉफी कॉर्नर में बैठकर आधा घटा बिताना तो और भी बेतुका लगा।

स्टाम्प और पोस्टेज बिकने वाले स्टाल पर लम्बी क्यू थी। चलते-चलते मैं रुकी और अनजाने ही एक इनलैण्ड मैंने खरीद लिया। पता नही क्यो मुझे लगा कि यदि उसे एक लाइन ही लिखकर पोस्ट कर दूँ तो कैसा हो? सिर्फ इतना ही तो पूछना है कि तुम्हे कैसा लगता है? यह ठीक है कि उसने मना किया था, पर वह मना कर दे और मैं मान लू—ऐसा भी कब हुआ था? और यदि ऐसा मैंने नही किया तो शायद यह बोझ इतना भारी भी हो सकता है कि कही यह पूछने उसके शहर ही न चल दू कि तुम्हें कैसा लगता है? और फिर उससे कहूंगी कि तुम इतनी दूर और इतने पराये क्यो लगने लगे थे जितना ससुराल से पहली बार लौटने पर बेटी को अपना पीहर पराया लगने लगता है।

कॉफी कॉर्नर मे बैठकर मैंने सब कुछ लिख डाला। दोनो सिरे चिपका कर पर्स में डाल दिया। अब पोस्ट करने में दिक्कत नही थी। सिनहा आ गया था। उसके चुटकुले, बातें और कविताएँ मुझे अच्छी लगती हैं। मेरी उदासी का कारण वह जानता था। उसने मेरी शाम को बहलाने की पूरी कोशिश की। कॉंटे कुछ तेजी से घूमने लगे·· कॉफी के प्याले और कोकाकोला की स्ट्रा में सचमुच शाम कुछ जल्दी डूब गयी ····अब हम प्लेटफार्म पर थे।

ट्रेन छूटने में देर थी। सिनहा चुप था। दूर सिगनल पर टिकी उसकी नजरें जाने क्या देख रही थीं···। मैंने मन-ही-मन पर्स में रखे पत्र को पोस्ट करने की बात सोची और हिसाब लगाया कि अगर परसो सुबह तक उसे मिल जाय तो वह शाम को मुझसे जरूर ट्रंककाल पर बात कर सकता है, नहीं तो उसके अगले दिन····। सिनहा मेरी तरफ मुडा। कुछ मुस्कराया। 'इतनी उलझन में मत रहा करो। जहाँ कोई दिक्कत हो वहाँ गालिब को याद करो। समझीं? उसके पास हर मर्ज की दवा है, कोई ऐसी स्थिति नहीं जिस पर ग़ालिब ने न कहा हो। वह सुना है—? दर्द मिन्नतकशे दवा न हुआ, मैं न अच्छा हुआ, बुरा न हुआ।'

मैंने कुछ कहना चाहा था, पर कह नही पाई। लोकल ट्रेन उसको लेकर एक झटके से चल पडी थी और मेरा हाथ हिलकर रह गया।

मैं वापस लौट पड़ी। ठीक ही तो कहा था सिनहा ने, दर्द मिन्नतकशे दवा आखिर क्यो हो? यही बिल्कुल ठीक है। पत्र मेरे हाथ में था। मैं लेटर-बाक्स की ओर बढ गई और उसके पास पडे डस्टबिन में पत्र के टुकडों को फेंक कर तेजी से आगे की ओर चल पडी! कमरे के मार्च से अब मुझे कोई डर नहीं था···!



एक राजस्थानी कथा

बातो कूंजड़ो

अमोलकचन्द जांगिड

■

गुदड़ी बाजार में मोकला कूंजड़ा-कूंजड़ी बैठै। सब्जी रो सारो ठेको आंकै हीज रैवै। आंरो न्यारो हीज पैरान, न्यारी हीज बोली। सुभाव रा सुतत्र। मूंई वातां रो नुयो ही ठसको। सवेरै सवेरै बाजार में सब्जी मौलावता मिनखा री मोकली भीड रैवै। कूंजड्यां सेठां, पडता री धोती पकड-पकड आपरी ओर खीचै तो की लुगाया रै घाघरै री लावण पकड राखै अर आपरी सब्जी, फलां रो मोल-तोल ओरा सू सैंगो बता'र चेपणै री धणी कोसिस करै। जे कोई मोल-तोल करया पछै चीज न लेवै तो फेर आगलै रा लत्ता लेती देर नी लगावै—'अ · अ·· ए ··या लेगी ··या खागी · सरोली ··या आया है सेठ। पीसे-टके गाठ सू काटते जोर मोत आवै। आ सदा'ई खाया···अगूर या खागा···भमेरी।'

पण आ कूजडा में वातिये कूजडै मे की विसेसता न्यारी हीज ही। विचारो भोत गरीब। सिर पर फाटेरी पीली पगडी। कमीज रो आगै रो आधो हीसो तो साबूत पण पाछलो भाग गायब। कई लीरङ्या सू गाठ-गठीलो होरचो। धोती तो जावक लीर-लीर होरी। लाग साटै लीरियां दबीज जावै पण गोडा री ढकणी धोती रै छेकलै मा सू वारै मूडो काढ'र आपरी आजादी रो डको चवडै-धाडै पीटै। ४५ वरस के वातिये नै ६० वरस रो बुडापो आ घेरचो। सिर सो धोलो होरचो। दाढी रा नूर भी धोला वादल रा चूखा-सा पून रै रलकै साटै उडता फिरै। आल्या पताल जारी। पूरो लम्बो सरीर। कवा आगै झूकेडा। एक छै आगल वाड रो खरलो सिर पर धरचा, जिमें वाजार री बचीखुची सब्जी-फल घाल्या गाव, वास, गल्या में वेचतो फिरै। अर वीरो टेरणो भी लोगा नै न्यारो लागतो—'लेल्यो···अे आम खरवूजा ··· वे·· र·· ।'

म्हारै मोहलै में ज्यू ही वातिये रो टेर पडती, म्हे सारा जणा दडाछट भागता' अर वातिये न घरां बुला'र ल्यावता। 'ओ वातिया, ओ वातिया, म्हारै घरा चाल' री जिद करता वीरी धोती-कमीज रै लूम जाता पण पैली आपरै घरां री पोली में लेजावणै मे कीं कसर नी छोडता। 'रै·· रै···रै·· ओ मालै रा · यू ·· क्यू करै·· परै···परै' रो भिडकी देतो। छेवट म्हारी पोली में जरूर पूगतो। पोली रै मुह आगै दोनू-कानी दो गोखा। म्हे भी म्हारै फन रा उस्ताज हा। पैली सू मोरचो बांध्यो राखता। ज्यू ही वातो पोली में वडती टेम झुकतो त्यू ही म्हे गोखै पर खडचा ऊपर की ऊपर एक दो आम या वेरिया रो पूरो गपटो भर भाग जाता। अलवता ई वात री पूरी चोकसी राखता कि वातै नै वेरो नी पडै पण कदे-कदे वीरी आख्या सू लुकणो भोत मुसकल होतो। फेर तो वातो गैल भागतो। पगडी रा पेच खिडता रैता। क्रोध सू मुह रा झाग धोली दाढी में लाग्योडा रुई का सा पैल दीखता पण वो माई रो लाल पीछो नी छोडतो। घणा रोला करतो—'अे अे मालिये री भू · तेरा·· जाम · नी · मानै ··आम लेके भागगा, पीसा धराऊगा। एक वो तोलिये रो लाडलो·· ' न जाणै के-के नाम ले ले' र थूक उछालतो। पण वीसू वास-गुवाडी रै एक छोरै रो नाम छानो नी हो। कदे-कदे चौमुखी राड छिडती जणा औसाण-चूक होजातो। कारण एक रै लारै भागतो तो दूसरो खरलै पर धावो वोलतो। विचारो वातो हांफ जातो। टावरा री मावा व नुई वीनणत्या रा दांत अर खी · खी·· री आवाज आती रैती। इतो खा'तो अर झाल उठा कर भी मुलकतो रैतो।

सुभाव घणो ठडो । बाजरै-मोठ रा चिनें'क दाणा सू सतोष करतो । रिपिया-पीसा रो की हिसाब नी हो । सिञ्झ्या पड़्या दाणा ले'र घरां पूगतो अर आपरो पेट पालतो ।

एक दिन री वात । बो सीन देखणै रो मजो आयो जिस्यो आज ताणी की दगल में शेरे-हिन्द या हिन्द-केसरी री कुश्ती देखणैं में भी नी आयो । म्हारा दादाजी अर बाताजी दगल मे जुटरया है । लुगाया रो जमघट लागरयो है । रोला-रंपा भोत होरया है । पण वै दोनू एक दूसरै री धोली दाढी हाथा सू कस'र पकड़ राखी है । मुख सू एक सबद भी नी निसरै । लोग खड्या दग रैग्या । फाउल खेल होवणै सू घणी मुसकल सू दोनुवा नै न्यार-न्यारा करया पण दाढिया रा बाळ दोनुवा रै हाथा में हा । आ देख'र सगला मिनख हास्या । 'छै मीन्हे होग्ये पीसे नी देवै' रै कारण यो दगल मड्यो । पण इती होणै पर भी सिपत आ देखो कि दोनू एक'र जगा चिलम भर आप-आप री मजे में पीरया है । चेरै री भाल नाराजगी सारी गायब जाणी की वात'ई नी हुई ।

सन् १९४७ । आजादी री खुशी । पण भारत रो वटवारौ । हिन्दुस्तान पाकिस्तान बण्या । विचारो बातो भी डरतो पाकिस्तान जावणै री सोच्यो पण वीरो हिरदो मातभूम नै छोडण त्यार नी । कालजो फाटै । सूखो गड़ी आख्या मे आसू देख'र म्हारी आत्मा रोई । वाते नै बुला'र समझायो—'बाता ! तू डरै नी । तेरी काया पर हाथ म्हारै जीवता कोई नी घाल सकै । पाकिस्तान भूल'र ना जाये ।' बातो पाकिस्तान तो नी गयो पण एक दिन भूख री मार सू तग आ'र मातभूम (गाव) नै छोडणो पड्यो । वीरी कूजड़ी टाबर-टीकरा ने लै'र दो रोटी खातर दूसरै गांव चली गई । जद म्हे या सुणी क बातो छोड'र चल्यो गयो तद म्हानै बडो दुख होयो । ईरो खास कारण यो हो कि गाव रा टाबरा सू टसकोली अर दिन में एक'र नी करलेवै जठै ताणी वी नै जक नी पडती । वींरी आतमा में सिवात नी पडती ।

गांव रै टाबरा नै वींरी भोत हुसेर आती । भेला होवता दतही बातै नै याद करतां । वीरै हिरदै री बिसालता रा गुण गांवता । कितो सीधो, कितो भोलो । खरलै री सारी चीजा खोसापीनी मे ही टाबर लेजाता पण वी माणख री नाक पर सल नी देखी । अंधेरै पड्या की रै घरा रोटी खा'र जो कुछ नाज भेलो होतो जको सारो कूजडी नै सभलातो । कूजड़ी घणा रोला-झींकणा करती पण ई चीकणै घडै पर बूद नी ठैरती । वीरा रोला फूटेड़ी रिकार्ड-सा

होता। छेवट राजीवाजी हो'र पड रैवतां। ओ वारो नित-हमेस रो पाठ हो। स्मरती-पटल पर ये सारी बातां म्हारै हिरदै मे हिचकोला मारती अर आत्मा मे एक हलवा-हलवा कीडी-सी लड़ती, एक सुई-सी चुभती। कालजो कस-मस कर'र रैजातो। ई दुख अर कचोट री कीं सीमा नी।

एक दिन चाणचक' ई बातिये नै म्हारै मोहलै में देख्यो। टाबर सै भेल्या होग्या अर बोलण लाग्या, 'बातियो आग्यो रै, बातियो आग्यो रै।' बातो म्हारी पोली में आयो। सब सू राम-राम करी अर बैठ्यो। अब वींरै सिर पर खरलो नी हो। वींरै गावां-लतां सू' बेरो पडै हो कि जरूर अब धाप'र रोटी खा लागो है। चोखी पीली रग्योड़ी पगडी। मोटी धोती अर मोटो हीज मेखलियो। धोली चमडी पर गैरो कालो मैल अब कठै हीज नजर आवै हो। मूडै पर संतोष पर आंख्यां में आंसुआं री लडी। बातियो फफक-फफक रोवै। कदे टाबरां रै सिर पर हाथ फेरै, कदे पुचकारै—'तोलिये री मा! सुजानगढ में सै सुख है। मजूरी भी ठीक हो है। दो टेम रोटी भी बापरै लागी पण मन्नै तो जलम भूम अर टाबरां री इती हुँसेर आती क मैं बठै कदे-कदे रोवतो-रोवतो हिचकियां भर जातो। कदे निकलनै री जचातो तो कूजडी नी मानती। पण मेरो मन नी लाग्यो। मेरी आतमा खोई-खोई-सी रैती। कालजो उमड़-उमड़ आंवतो। आखर मन में पक्की जचगी कि भूख मरनो मजूर है, पण जलम भूम नी छुटै। सो मैं तो टाबरिया नै छोड'र आग्यो।'

बूढी दादी री आंख्यां वींरो जलमभूम रो अखय प्रेम देख'र एक अमिट सतोष सूं चमकी अर वींरै मुख सू सबद निकल्यां—'बातू! म्हानै रोटी मिलसी तो तन्नै भी। गांव में मजे सूं घूम-फिर पण ओजू गांव छोड'र मत जाये। सब्जी खातर रिपिया-पीसा म्हारै सूं लेजाये अर काल सू बेचणू सुरु कर दे। म्हारी इच्छा है क तेरी बाहीज आवाज ओजू सुणीजे—'लेल्यो···खे···पचेरी रा बेरिया ····!'



एक ऐतिहासिक मैत्री व शील कथा

कसौटी

भँवरलाल नाहटा



अहमदावाद में सुलतान मुहम्मद वेगडा राज्य करता था। गुजरात में जैन धर्म का प्रभाव बढा-चढा होने से वहां के शासक भी अपेक्षाकृत कोमल, उदार और सहिष्णु वृत्ति वाले हो गये थे। महम्मद वेगडा को खरतर गच्छाचार्य श्री जिनेश्वर सूरि का सत्सग मिला और उसने ही इन्हें धर्मवल्लभगणि से जिनेश्वर सूरि बनाया। अर्थात् उसने स्वय पद स्थापना कराके अपने नाम से वेगड विरुद दिया जिससे खरतर गच्छ की वेगड शाखा प्रसिद्ध हुई। निम्नोक्त पद्य इस विषय का ज्ञातव्य देते हैं कि —

वरतो पूरयो खान नो, अणहिल्ल वाड़इ मांहि हो।
महाजन बंदि मुंकावीयो, मेल्यो संघ उछाहि हो ॥ स० ॥ ६ ॥
राजनगर नइ पांगुरया, प्रतिबोध्या महमद्द हो।
पद ठवणो परगट कियो, दुख दुरजन गया रद्द हो ॥ स० ॥ ७ ॥

सींगड़ सींग वधारिया, अति ऊँचा असमान हो ।
धींगड़ भाई पांच सइं, घोड़ा दीधा दान हो ॥ स० ॥ ८ ॥

सवा कोड़ि धन खरचीयो, हरख्यो महमद सा हो ।
विरुद दियो वेगड़ तणो, प्रगट थयो जगमांहि हो ॥ स० ॥ ९ ॥

[ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह]

इस काव्य में सूरिजी द्वारा मुहम्मद शाह वेगडा को प्रतिवोध किये जाने व श्रावको द्वारा पाच सौ अश्वदान तथा सवा करोड द्रव्य व्यय करके पदोत्सव कराने का उल्लेख है । इसके अतिरिक्त और भी वहुत से काव्य एव पट्टावलियो में वेगड गच्छ के उत्कर्ष का विशद उल्लेख पाया जाता है । ओसवालों में वेगड गोत्र भी इसी कारण प्रसिद्ध हुआ और अव भी विद्यमान है । कहा जाता है कि शाह खेमा देदराणी भी इसी समय हुआ और उसने सुलतान मुहम्मद वेगड़ा को प्रचुर द्रव्य देकर दुष्काल के एक वर्ष का व्यय वहन कर महाजनों का 'शाह' विरुद कायम रखकर अक्षुण्ण यशोपार्जन किया था । इसी वादशाह मुहम्मद वेगडा के समय मे देवचन्द व अमीचन्द नाम के दो तरुण जैन मित्र हुए जिनकी इतिवृत्त कथा कच्छ के ज्ञान भडार के एक वृहत् कथा-कोश से यहां प्रस्तुत की जा रही है । इसमें दो मित्रो की मित्रता निर्वाह के साथ-साथ देवचन्द और वजीर पुत्री रूपसुन्दरी का उद्दात चरित अवश्य ही भारतीय सस्कृति को गौरवान्वित करनेवाला है ।

अहमदावाद मे महम्मद वेगडा वादशाह राज्य करता था । उसके नवलराय नामक एक वजीर था । वजीर नवलराय की पुत्री रूपसुन्दरी अत्यन्त सुन्दर व लावण्यवती थी, जो पाठशाला में पढती थी । उसी नगर के अधिवासी दो व्यवहारियों के पुत्र, देवचन्द व अमीचन्द भी उसी पाठशाला में पढते थे । प्रतिदिन के परिचय प्रसग से कितने ही अरसे वाद वजीर की पुत्री रूपसुन्दरी और देवचन्द में परस्पर दृढ प्रीति हो गई । उन दोनो में परस्पर इतना प्रेम था कि एक दूसरे को विना देखे घडी भर भी रहना कठिन हो गया । दोनों का अध्यापन शेष होने पर जव पाठशाला छोड़ने का समय आया तो रूपसुन्दरी ने देवचन्द से कहा, 'अपनी पढाई तो शेष हो गई, अव अपन कैसे मिल सकेंगे ?' देवचन्द ने रूपसुन्दरी से कहा, 'इसकी तनिक भी चिन्ता मत करो, मैं प्रतिदिन रात्रि के समय तुम्हारे महल में आया करूं गा ।' रूपसुन्दरी सन्तुष्ट होकर अपने घर गई और देवचन्द, अमीचन्द दोनों मित्र भी पण्डित से छुट्टी पाकर अपने-अपने घर आ गए ।

अब रात्रि के समय देवचन्द का वजीर की पुत्री रूपसुन्दरी के महल में जाने का नित्यक्रम हो गया। रूपसुन्दरी ने एक डोरी की निसरणी बना रखी थी जिसके अवलम्बन से देवचन्द महल में निरानद पहुच जाता और अपने लिए बिछाये हुए सिंहासन पर जाकर बैठ जाता। रूपसुन्दरी अपने प्राणप्रिय मित्र के साथ रात भर विद्वद्गोष्ठी करती जिससे उन दोनो के अध्ययन की पुनरावृत्ति होने के साथ-साथ बुद्धि भी विकसित होती जाती थी। वे परस्पर दूहा, गूढा, गाहा, छद, हीयाली, प्रश्न प्रहेलिका, अन्तर्लापिका, बहिर्लापिका आदि की पृच्छा द्वारा रात्रि निर्गमन करते और जब चार-पांच घडी रात रहती तो देवचन्द अपने घर आकर सो जाता।

एक दिन ज्योही देवचन्द अपने घर से निकलकर वजीर के घर जा रहा था त्योही सयोगवश बादशाह ने देख लिया। बादशाह काली नकाब धारण किये जा रहा था और उसके हाथ मे दुधारी तलवार थी। उसने सोचा, अभी आधी रात में यह कौन मनुष्य जा रहा है? इस बात का निर्णय करने के लिए वह देवचन्द के पीछे-पीछे हो गया। देवचन्द ने ज्योही वजीर की पुत्री के महल में जाने के लिए निसरणी पर पांव रखा, बादशाह ने उसका हाथ पकड लिया और कडे शब्दों मे पूछा, तुम कौन हो? देवचन्द ने कहा, मैं चोर या जार जो भी कहो सो हू! बादशाह ने उसका हाथ पकडे हुए अपने साथ ले लिया। आगे चलकर बादशाह ने देवचन्द से पूछा, क्या तुम्हारा यहां कोई सगा-सम्बन्धी है, जो तुम्हें रात भर की जमानत देकर रख सके? देवचन्द ने कहा, मेरे भाई, बाप सभी हैं, और बादशाह को अपने घर ले आया। पुकारने पर द्वार खोलकर बाप नीचे आया। बादशाह ने पूछा—सेठ! तुम्हारे ये क्या लगते हैं? उसने कहा, यह मेरा पुत्र है! नकाबपोश बादशाह ने कहा, यह बादशाह का अपराधी है, इसे रात भर अपने घर में रखो, मैं प्रात काल इसे बादशाह के सम्मुख उपस्थित करूगा। देवचन्द के पिता ने कहा, हमने इसे घर से बाहर निकाल दिया है, तुम्हारे जचे सो करो!

फिर बादशाह ने देवचन्द से पूछा, और कोई जामिन हो तो बोलो? देवचन्द उसे अपने बडे भाई के यहां ले गया, उसने भी पिता की भांति रूखा उत्तर दे दिया। बादशाह ने कहा, और भी कोई हो तो बोलो? देवचन्द ने कहा, मेरा एक मित्र है, उसके यहां चलिये। कहते हुए उसको अपने मित्र के गृहद्वार पर लाया और पुकारकर उसे उठाया। मित्र के नीचे आकर उपस्थित होने पर बादशाह ने पूछा, यह तुम्हारा कौन है? अमीचन्द ने कहा, यह मेरा मित्र है, प्राण जीवन

है, और सब कुछ है ! वादशाह ने कहा, तुम इसे रात भर की जमानत देकर रखोगे ? अमीचन्द ने कहा, इसके लिए मेरा मस्तक हाजिर है ! यह कहकर अमीचन्द देवचन्द को अपने घर में ले गया। वादशाह ने उसके घर पर पान का पीक डालकर चिह्न कर दिया और एक किनारे खड़ा हो गया। थोड़ी देर वाद देवचन्द अपने मित्र की आज्ञा लेकर घर से वाहर निकल पडा। वादशाह उसे निकलते देख त्वरित गति से वजीर की पुत्री के महल के नीचे जा पहुचा और निसरणी पर चढकर महल की रांस के वरामदे मे जाकर कोने में छिप गया। देवचन्द भी थोड़ी देर में निसरणी के मार्ग द्वारा महल पर जा चढ़ा। उसने देखा, दीपक का प्रकाश मद पड़ गया है और रूपसुन्दरी शोकपूर्ण मुद्रा में गलहत्था दिए वैठी है। उसके अश्रुप्रवाह से सारी अगिया भीग गई है। उसे दीर्घ निश्वास लेते देखकर देवचन्द ने खखारा किया तो रूपसुन्दरी एकाएक हर्षोल्लास पूर्वक उठ खडी हुई और उसका आगत-स्वागत करने लगी। उसने पूछा, स्वामिन् ! आज आपको इतनी देर कहां लग गई ? देवचन्द ने सारा किस्सा वताते हुए कहा कि मैं अमीचन्द से पूछकर तुम्हारे से मिलने के हेतु यहा आया हूं ! कल प्रात काल तो न जाने वादशाह मेरी क्या दुर्गति करेगा।

देवचन्द द्वारा वर्णित सारी घटना श्रवणकर रूपसुन्दरी अत्यन्त चिन्तित हुई और थोडी देर कुछ सोचकर उठी, वह करवद्ध होकर इस प्रकार कहने लगी, स्वामिन् ! इतने दिनो तक अपन दोनो ने किसी भी प्रकार से लेशमात्र मार्यादा का उल्लघन किये विना पवित्र प्रेम को निभाया है। और अव जवकि अन्तिम समय सन्निकट लग रहा है ऐसी स्थिति में मन की हौंस मन मे न रह जाय अर्थात् 'पुहक पण न खाधो अने हाथ पण दाधा' वाली गुजराती कहावत चरितार्थ न हो जाय ! इसलिए यह चरणों की दासी प्रस्तुत है और आत्मा के साथ यह भौतिक शरीर भी जो विशुद्ध मन संकल्प से आपके श्रीचरणों में समर्पित है, यथेच्छ उपभोग द्वारा अपनी हौंस पूर्ण करें।

देवचन्द ने कहा, प्रिय रूपसुन्दरी ! परमात्मा ने आज तक जो अपनी मर्य्यादा को सुरक्षित रखा है तो अल्पकाल के लिए क्यों इस मन, वचन और काया को अपवित्र किया जाय ! यदि हम दोनो का प्रेम सच्चा है तो अवश्य ही आगे चलकर परमेश्वर भवान्तर मे अपना मिलाप करावेगा। फिर भी तुम इतना काम करना कि जव मुझे शूली देने के लिए वाहर ले जाया जाय, तुम वहां अवश्य उपस्थित होना। रूपसुन्दरी ने कहा, स्वामिन ! मैं वहा निस्सदेह आऊगी, पर आप मुझे पहचानेंगे कैसे ? हजारो की भीड़ के वीच खोजना भी तो कठिन

होगा। देवचन्द ने कहा, यह सकेत तो तुम्ही बताओ। रूपसुन्दरी ने कहा, मैं पुरुष के वेष में काले स्वांग में आकर उपस्थित होऊगी! देवचन्द ने कहा, बहुत अच्छा, धैर्य्य, धर्म और साहस ही हमारा सबल है।

कहना न होगा कि बादशाह स्वय इसी महल के कोने मे छिपा-छिपा सारी बातें देख-सुन रहा था। वह सांस रोके इस प्रेमी-युगल की बातें सुनकर अवाक हो गया। उसने मन में सोचा, धन्य है इस प्रेमी-युगल को। यह एकान्त महल, यह तरुण अवस्था, यह आकर्षक रूप-राशि, यह रात्रि का समय और परस्पर एकाङ्गी प्रीति, फिर भी अपनी मर्य्यादा को अक्षुण्ण रखना। काजल की कोठरी में नित्य रहते हुए भी काली रेखा न लगाना धन्यवादार्ह है ये। देवचन्द वस्तुत मनुष्य नही देव ही है, अरे ये तो बेदाग हीरे है! कहा हमारी हैवान सस्कृति और कहा इस आर्य्यावर्त्त की पावन सस्कृति, वस्तुत जैसा मैंने गुरु महाराज श्री जिनेश्वर सूरिजी से धर्म का स्वरूप सुना, प्रसगवश विजयकुमार और विजया का जो अतीतकालीन दृष्टान्त सुना आज इस तरुण युगल में वह भावना साकार रूप में उपस्थित दृष्टिगोचर होती है। सत्य ही ऐसी भावी सन्तान के कारण ही विना थभे के आकाश खडा है और सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी और समुद्र अपनी मर्य्यादा को निभाते हुए चल रहे है।

इस प्रकार मन-ही-मन प्रशसा करते हुए बादशाह वजीर नवलराय की हवेली से नीचे उतरकर रूपसुन्दरी की फिर परीक्षा करने का कार्यक्रम सोचता हुआ अपने महलो में चला गया। देवचन्द ने रूपसुन्दरी से विदा मागते हुए कहा—

'आतां तणा जुहार, बलतां तणां वधामणा
दैव तणा विवहार, मिलसुं के मिलसुं नही।'

यह दोहा कहकर देवचन्द भी रूपसुन्दरी के महल से उतरकर अपने प्रिय मित्र अमीचन्द के घर आकर निश्चिन्त सो गया।

प्रात काल होते ही बादशाह अपनी राजसभा में आकर तख्त पर आसीन हो गया और अहलकार को आज्ञा दी कि वह अमीचन्द के पीक-चिह्नित घर से देवचन्द को तुरन्त लाकर उपस्थित करे। राजपुरुष ने अमीचन्द के यहा आकर पुकारा। अमीचन्द खिडकी के आगे बैठा हुआ दतौन कर रहा था। देवचन्द को उपस्थित करने की राजाज्ञा सुनकर अमीचन्द तुरन्त उठा और देवचन्द के स्थान पर स्वय उसके साथ चल पडा। अमीचन्द की स्त्री ने देवचन्द को उठाकर कहा कि तुम्हारे भाई को राजपुरुष बुलाकर ले गए है।

देवचन्द यह सुनते ही हड़बड़ाकर उठा और दौड़कर अमीचन्द के पास जा पहुंचा। वह राजपुरुषो से कहने लगा, अरे ! तुमलोग किसे ले जा रहे हो ? देवचन्द तो मैं हू। अमीचन्द ने कहा, नहीं, नहीं, देवचन्द मैं ही हू। इस प्रकार कितनी ही देर तक दोनों का विवाद देखकर राजपुरुषों ने कहा, भाई, वहां कौन-से लड्डू बटते है ? तुम दोनो में जो देवचन्द हो वही हमारे साथ चले। देवचन्द ने बडे ही हठ और अनुनय-विनय पूर्वक अमीचन्द को अपने घर वापस भेजा और देवचन्द राजपुरुषो के साथ वादशाह के पास आया।

वादशाह ने वजीर की पुत्री का स्नेह देखने के लिए कोतवाल को बुलाकर उसके कान में कहा, इसे हरगिज मारना नहीं पर गदहे पर बैठाकर वजीर के घर के नीचे से निकालते हुए पूर्वी दरवाजे पर से जाना। कोतवाल शाही आज्ञानुसार देवचन्द को गदहे पर चढाकर पूर्वी दरवाजे ले गया। वादशाह स्वय वजीर को साथ लेकर शिकार के वहाने निकल पड़े और घूमते-फिरते पूर्वी दरवाजे पर आ पहुंचे। वादशाह ने वजीर से कहा, अरे नवलराय ! देखो तो सही, सव लोगों से भिन्न यह काले वस्त्रोंवाला सवार कौन है ? वजीर ने घोड़े की वाग उस ओर की। वादशाह और वजीर को अपने निकट आते देखकर श्यामवस्त्र धारी सवार रूपसुन्दरी चमकी और तत्काल घोडे को मोड़ा। वजीर ने भी सामने आकर पुत्री को पहिचाना और वादशाह से कहा, यह तो हुजूर की फरजन्द है ! वादशाह ने प्रसन्न होकर शिरोपाव मगाये और देवचन्द को नहलाकर सात बार सुनहरे शिरोपाव पहनाये और हाथी पर बैठाकर पच शब्द, वाजित्र बजाते हुए उसे अपनी राजकचहरी में लाये। वादशाह सिंहासनरूढ हुआ और देवचन्द को अपनी गोद मे बैठाकर वजीर से कहा, अरे नवलराय ! तुम्हारी रूपसुन्दरी और मेरे इस पुत्र देवचन्द की जोडी उत्तम है, अत· इनका परस्पर विवाह करें ! वजीर ने कहा, वादशाह सलामत की आज्ञा शिरोधार्य है ! ऐसा ही अवश्य करें !

वादशाह ने ज्योतिषियों को बुलाकर तत्काल विवाह-लग्न निकाला और उसी दिन दोनों का विवाह कराके उन्हें सतमजिला महल देकर उसमें रखा। पाणिग्रहण के पश्चात हथलेवा छुड़ाने के अवसर पर वारह गावो सहित धोलका नगर दिया। कहना नहीं होगा कि वादशाह ने विवाह विधि आर्य्य सस्कृति के अनुसार ही की थी। दूसरे दिन प्रात.काल होते ही वादशाह ने देवचन्द के भाई व पिता को बुलाकर उन्हें अत्यन्त तिरष्कृत करते हुए कहा कि—'छोरू होय तो कछोरू थाइ पण मावीत्र कुमावीत्र न थाये' अतः तुमलोग मेरे नगर मे

रहने योग्य नहीं हो ! उन्हें नगर से निर्वासित करके बादशाह ने देवचन्द के मित्र अमीचन्द को बुलाया और उसकी मित्रता को धन्य-धन्य कहकर भूरि-भूरि प्रशसा करते हुए पुरस्कार पूर्वक उसके घर पहुचाया। देवचन्द और अमीचन्द अखण्ड प्रीतिपालन कर सुखी हुए।

मित्र देवचन्द, अमीचन्द और रूपसुन्दरी तीनों अपनी परीक्षा की कसौटी पर खरे उतरे। मुसलमान शासक मुहम्मद वेगडा की शासन पद्धति और विशाल हृदयता भी सराहनीय थी। वासना रहित सच्चा प्रेम, शील का आदर्श और मानवीय श्रेष्ठ गुणों से ओतप्रोत इस ऐतिहासिक वृत्तान्त का हार्द है। आचार्य जिनेश्वर सूरि के उपदेश इसकी पृष्ठभूमि मे विराजमान हैं।



बातचीत

बिशन स्वरूप



कल वाली जगह पर ही लड़की खड़ी थी और पास में एक लड़का भी। वह जब उन दोनों की ओर बढ़ा तो लड़की दूर से ही उसे देख, मुसकरा गयी। किन्तु साथ खड़ा लड़का नहीं मुसकराया, बल्कि उसे यकायक अपनी ओर आता देख, जैसे गम्भीर-सा हो गया।

उसने लड़की की मुसकराहट का कारण जानने का निर्णय किया और पास ही जाकर खड़ा हो गया। उसके खड़े होने के उपरान्त लड़की व लड़के के बीच दूरी बढ़ गयी। यह देख, वह मन-ही-मन मुसकरा पड़ा। शायद नये प्रेमी हैं इसलिए उसके आ जाने से डर-से गये हैं, उसने सोचा।

वह अपना रौब जमाना चाहता था। कुछ क्षण बाद लड़का कुछ सोच के लड़की के पास से उसके पास आ खड़ा हुआ, तो उसे ज़रा दहशत हो आयी। लेकिन वह बराबर लड़की को घूरता रहा, यह सोचकर कि इस तरह लड़के पर अवश्य उसका कुछ रौब पड़ेगा, और लड़की भी कुछ हरकत पर उतर आयेगी।

'लड़की को घूरते तुम्हें शर्म नही आती ?' यकायक लड़के ने उससे कहा।

वह जैसे चौंक पडा। बोला नहीं कुछ। अपनी बगल से लडके की छोटी-सी आँखो को चुभता देख, सड़क की ओर देखने लग गया।

इस पर लडके को क्रोध आ गया। बोला, 'बोलते क्यो नही ?'

'क्या ?' उसने गर्दन को झटका देकर पूछा।

'तुम अभी लडकी को क्यों घूर रहे थे ?' लडके ने अपना प्रश्न दोहराया।

उसने खोये हुए अन्दाज मे पूछा, 'किस लडकी को ?'

लडकी की तरफ इशारा करके जब लडके ने कहा 'उस लडकी को' तो वह एक फीकी हँसी हँस गया, और तनिक ठहरकर व्यग्य के लहजे में बोला, 'क्या वह लडकी है ?'

'तो तुम्हें क्या दिखती है ?'

'पहनावे से तो लडका मालूम देती है !'

'खैर ! वह कुछ भी है पर तुम उसे घूर क्यो रहे थे ?'

उसने इस वार जैसे सात्वना के स्वर में कहा, 'मिस्टर ! तुम्हें गलतफहमी हो गई है। मैं उसे नही घूर रहा था।'

'विलकुल नहीं ?' लडके ने पूछा।

उसने कहा, 'नही !'

'फिर क्या देख रहे थे ?' आखिर लडके ने अपनी जिज्ञासा जाहिर की।

वह फिर उत्तर दिये बिना लडकी की ओर देखने लग गया। लडकी एक दीवार से विलकुल चिपक-सी गई थी। दीवार के कुछ ऊपर एक बोर्ड लगा था, जिसके उभरे-से अग्रेजी के अक्षर दूर तक आने-जानेवालो को 'टी-हाऊस' का सकेत दे रहे थे। बोर्ड को देखता हुआ वह कुछ सोचने लगा था।

'तुम फिर उधर देखने लगे ?' लडके ने उसे चौंकाया। वह चौंककर हलका-सा मुसकराया, फिर लडके की ओर देखता रहस्यात्मक ढग से बोला, 'दोस्त ! तुम एक वडी गलतफहमी के शिकार हो गये हो। अब जब कि मैं 'टी-हाऊस' का साइनवोर्ड देख रहा था, तुम सोच रहे थे कि मैं लडकी को देख रहा हू। थी न यही वात तुम्हारे मन मे ?' रुक-कर उसने लड़के से पूछा।

लड़के ने कहा, 'हा, पर उस बोर्ड मे क्या खासियत है जो उसे घूर रहे थे ?'

'इस बोर्ड के बचे रहने पर मुझे ताज्जुब हो आया था, क्योंकि 'हिन्दी आन्दोलन' में अंग्रेजी के तमाम साइनबोर्डों की होली हो चुकने पर भी यह ज्यों-का-त्यों कैसे लटका रह गया है !' उसने आश्चर्य के साथ बताया।

लड़का उसकी झुठलाने की चापलूसी के कारण अन्दर-ही-अन्दर मुसकराता गया। जब वह बोल चुका, तब बोला, 'और कुछ झूठ बोलना हो तुम्हें तो बोल लो !'

वह कुछ नहीं बोला। चुप रहा। लडके ने वैसे ही फिर बुदबुदाते हुए कहा, 'मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हू !'

इससे वह लडके को कनखियो से देखने लगा था। लडके का चेहरा तमतमा गया। गुस्से से भर रहा था।

उसने ठडेपन के साथ नम्रता से पूछा, 'तुम क्या जानते हो ?'

'यही कि अकसर तुम लडकियों को छेड़ते हो !'

'बकते हो, लडकियाँ लड़कों को छेड़ती है !'

'यह कैसे हो सकता है ?'

'आजकल यही हो रहा है, लडकियों ने अपनी छातियाँ इतनी बढा ली है कि भीड़ मे टकराती डोलती हैं !'

'बको मत !'

'चिल्लाओ मत !'

'देखो जनाब, अगर तुमने रौब जमाना चाहा तो मैं अभी तुम्हारी चाँदी बना दूँगा !' लड़के ने यह कहते हुए अपनी आवाज बारीक की।

तब उसकी तुरन्त समझ में आ गया कि लड़का उससे चाहता क्या है ? उसने सोचा, लडका जबरन लड़की को उसके गले मंढना चाहता है। वह क्रोध में भर उठा। लडके को यो देखने लगा जैसे अपनी पैनी नजरों से उसके शरीर को नोंच कर पटक देगा। किन्तु सहसा ही उसे लडके के द्वारा कहे गये 'चाँदी' शब्द की स्मृति हो आयी। वह 'चाँदी' शब्द से डर पडा। एक झुरझुरी उसके शरीर में फैल गयी। सोचने लगा, आखिर यह लडका है कौन ? और बेमतलब क्यों उससे लडने को उलझ रहा है ?

'क्या लडकी तुम्हारी बहन है ?' कुछ समय लेकर उसने लडके से पूछा।

'नहीं तो !' लड़के ने उत्तर दिया।

'फिर 'लवर' होगी ?' वह बोला।

लडके ने तपाक से कहा, 'आजकल कोई भी 'लवर' किसी की नही होती, इसलिए मैं इस रोग से कोसो दूर हू। पर यह लडकी तुम्हारी 'लवर' होना चाहती है !'

'अजीब बात है, यह लडकी और मेरी 'लवर' ?' उसकी गर्दन की नसें फडक रही थी।

हाँ !' लडके ने मजबूरी में जैसे गर्दन को झटका दिया।

वह कुछ अनसमझ हो गया। उसकी नजर अनायास लडकी पर चली गयी। लडकी का चेहरा एकाएक सडक से गुजरती एक कार की हैडलाइट से साफ झलक गया उसे। लाइट से चौंधियाने पर लडकी ने उसकी ओर देखा। उसे अपनी ओर देखता देख हँस-सी पडी, और नजरें झुकाकर अपनी 'वी' आकार की चप्पलो को थपथपाने लग गयी।

वह लडकी पर से नजरें हटा कर, लडके के चेहरे को गौर से देखकर बोला, 'मेरी समझ में कुछ नही आ रहा है।'

'सच कहते हो तुम, आजकल किसी की कुछ समझ मे नहीं आ रहा। राजनीति से लेकर साहित्य तक मे। जैसे सब उलझन मे है और अपने-अपने दाव लगा रहे है।'

'पर मैं इस समय तुम्हारे से लडकी की बात कर रहा हू।'

'ओह! मैं तो भटक ही गया था। हाँ, अब बोलो ?'

'मैं इस लडकी से बिलकुल अपरिचित हू।'

'क्या ?'

'विश्वास मानो, मैं आज तक इस लडकी से नही मिला हू।' लड़के ने उसके कधे पर हाथ रखते हुए कहा, 'आजकल तो · '

उसने बीच मे ही लड़के को बोलते हुए रोक, कहा, 'कधे पर से अपना यह हाथ हटाओ।'

लडके ने हाथ हटाकर फिर अपनी बात कही, 'यह लडकी दिन भर तुम्हारी चर्चा करती रहती है। तुम्हारे ऊपर पूरी तरह मेहरबान है, अगर कहो तो लडकी से तुम्हारी बात कराऊँ ?'

'बात!' उसके चेहरे पर अजीब-सी परेशानी उग आई थी। निरीह-सा लग रहा था।

लड़का उसकी परेशानी भांप गया। बोला, 'सोचने की क्या बात है? लड़की से मैं तुम्हारी शादी तक करवा सकता हूं !...लेकिन मुझे एक बोतल पिलाने का वायदा तुम्हें करना होगा ?'

'बोतल !' उसने हिचकिचाते हुए बुरा-सा मुंह बनाया।

तब लड़के ने उससे पूछा, 'क्या तुम शराब नही पीते ?'

'नही तो !' उसने कहा।

'साथ तो बैठ सकते हो ?' लड़के ने जैसे उसकी आखो की चमक महसूसते पूछा।

उसका स्वर कुछ तेज हो आया, 'बैठना तो दूर रहा, मैं शराबी से बात तक करना अपनी तौहीन समझता हूं !'

लड़का उसकी बात पर हंस पड़ा। बाद में हंसी को एक गहरी सांस के साथ थामता बोला, 'लड़की भी शराबी को अपना पति नही बनाना चाहती है।'

फिर लड़के ने जेब का सिगरेट-केस उसके आगे बढाकर कहा, 'सिगरेट तो पीओगे न ?'

'नही !' तुरत उसने कहा।

लड़के ने 'केस' से सिगरेट निकाल अपने लिए सुलगा ली। एक लम्बे 'कस' का गोलाकार मुंह का धुआ उसकी ओर फेंकता बोला, 'सचमुच, तुम मुझे बहुत अच्छे व्यक्ति लगे। अगर तुम जैसे ही सब व्यक्ति हो जायें तो हिन्दुस्तान की नशेबन्दी की 'प्रोब्लम' अपने आप सुलझ जाये !'

वह लड़के से काफी आतंकित हो चुका था। अपने गुस्से पर अब काबू न रह सका। तीखे स्वर मे उसने लड़के से कहा, 'मेरा पीछा छोड़ो, मैंने कोई हिन्दुस्तान का ठेका ले रखा है ?'

लड़के ने उसे समझाया, 'देखो मिस्टर ! दिमाग से सोचो और फिर मुंह से उगलो। तुम एक हिन्दुस्तानी हो और हर एक हिन्दुस्तानी की समस्या दूर करने का तुम्हारा कर्तव्य है !'

'भाड़ मे जाये कर्तव्य, जाने दो मुझे !' वह चलने लगा था।

'ठहरो !' लड़के ने आगे होकर उसे रोक दिया।

वह सन्न रह गया। कुछ बोल नहीं पाया। सोचने लगा, वह इस समय लड़के के साथ कैसा व्यवहार करे ?.. पता नहीं यह लड़का है भी कौन, और क्या चाहता है ?

'क्या सोचने लगे हो ?' लडके ने उसे सोचते देख, पूछा ।

'कुछ नहीं' में उसने उत्तर दे दिया । तब लडके ने रुककर कहा, 'चलो, 'टी हाऊस' में बैठेंगे ?'

उसकी इच्छा नही हुई कि एक अजनबी के साथ 'टी हाऊस' में जाकर बैठ ले । साथ में कुछ खा-पी ले । बहाना करने को वह अलसाई दबी-सी आवाज मे बुदबुदाया, 'मैं तुम्हारा साथ नही दे सकता । मुझे आगे जाना है ।'

'मत दो मेरा साथ, पर लडकी का तो दे दो !'

'इस समय मैं किसी का साथ नहीं दे सकता ।'

'क्यों ?'

'मुझे बहुत ही जरूरी कार्य पर जाना है ।'

'तो क्या तुम इस समय टी हाऊस नहीं आये ?'

'नही !'

'पर तुम हर शाम टी हाऊस आते हो ?' लडके ने निश्चयात्मकता के साथ पूछा ।

'हां, पर आज मुझे एक काम याद आ गया है ।'

'काम तो मुझे भी है । लेकिन आज मैं तुम्हारे से फैसला करके ही जाऊगा ।'

वह लडके के समानान्तर आ गया, 'क्या फैसला ?'

'यही कि तुम इस लडकी को अपनाते हो या नही ?' लड़के ने फिर अपनी नपी-तुली बात दोहरायी ।

वह लडने को तैय्यार हो गया । साहस बटोरता बोला, 'देखो, अब बस अपनी बकवास बद कर दो, वरना मैं कुछ कर बैठूगा !'

'गरम क्यो होते हो ?' लडका कुछ नरम हुआ ।

आसपास खडे व्यक्ति उन्हें देखने लग पडे थे । दोनो को ध्यान में आया कि लोग उन्हें आकर्षण-बिन्दु बनाना चाहते हैं । कुछ देर दोनो चुप रह गये । थोडी देर बाद लडके ने चुप्पी तोडने को धीमी आवाज में कहा, 'यहां हम इस तरह अब खडे भी रहेंगे तो भीड इकट्ठी हुए बिना नही रहेगी । अच्छा होगा कि टी हाऊस में चलकर बैठ जायें !'

क्रोध से उसके नथुनें पुपाडी के गुब्बारे की तरह फैल व सिकुड रहे थे । वह

शीघ्र जैसे-तैसे लडके से निपट लेना चाहता था। न चाहते भी उसने कहा, 'ठीक है, अन्दर चलो !'

टी हाउस में घुसते समय उसने लड़की को एक नजर से यों देखा कि अगर कभी अलग से मिल गई तो साली को आज की इस हरकत का मजा चखा देगा। जैसे ही वह अन्दर आकर कुर्सी पर बैठने को हुआ था, सहसा पहले उसने लडके से पूछा, 'लडकी अन्दर नही आयेगी क्या ?'

लडके ने मुसकराते हुए कहा, 'तुम यह क्यो पूछ रहे हो ?'

'वैसे ही !'

'वैसे ही क्यों ? यह कहो न कि लडकी को अपने साथ बैठाना चाहते हो ?'

लड़के की यह वात उसे ऐसी लगी, जैसे बिच्छू डक मार गया हो। झल्ला पडा वह, 'मेरा यह मतलव नही था। अगर लड़की हमारे साथ होती तो वात एक सैकण्ड में सुलझ जाती।'

'वात एक वार उलझने पर बडो मुश्किल से सुलझती है !' लडका उदास-सा होकर वोला।

'क्यो ?' उसे आश्चर्य हो आया।

'क्योंकि वात भीषण रूप धारण कर चुकी है ! लडकी तुम्हें तहे दिल से प्यार करती है। कहती है, अगर तुमने उससे शादी नहीं की तो वह आत्महत्या कर लेगी !'

वह हँसने लगा, वेफिक्री की हँसी, जैसे लडका वच्चो की-सी बात कर रहा हो या पागल हो। फुसफुसाया, 'आत्महत्या तो इस लड़की का वाप भी नहीं कर सकता !'

'देखो, मिस्टर !' लडके ने वीच में ही तपाक से कहा, 'वात लडकी तक है। वाप को क्यों वीच मे लाते हो ? फिर ऐसा कुछ तुमने कहा तो मैं तुम्हारा .।'

लडका वीच में चुप हो गया। उसने साहस से पूछा, 'नही तो तुम मेरा क्या कर लोगे, वताओ ?'

'खून !'

वह घवरा गया। चेहरे पर उसके वेचैनी झलक आई। लडके को उस पर तरस आ गया। अव लड़के ने उसे ज्यादा न चक्कराकर, सीधे तौर से पूछा, 'अच्छा ! इतना वता दो तुम्हें यह लडकी कैसी लगती है ?'

'पतली !' उसने कहा ।

लड़का उसकी हा-में-हां मिलाता बोला, 'पतली ही नही, बहुत पतली ! मुझे तो डर है कि यह इतनी पतली न हो जाय कि छड़ी का रूप धारण कर ले ! इसलिए ही इसे किसी लड़के के साथ चिपका देना चाहता हू ।'

'लगता है, तुम पागल हो ।'

'हा, मैं तुम्हारी नालेज की दाद देता हू । लड़की के साथ रहनेवाला हर व्यक्ति पागल होता है, होता नही है तो बाद मे अवश्य हो जाता है ।'

वह उसे घूरने लगा । लडका उसे अपनी ओर यू घूरता देख, एक फीकी हँसी हँस गया, और फिर उसकी आंखो में अपनी आंखें पिरोकर बोला, 'अरे हा, पर यह लड़की हमारी तरह पागल नही है । पढी-लिखी है । बहुत अमीर है । खूबसूरत कितनी है यह तुम जान ही गये हो ।'

कहते-कहते लडके का चेहरा शरारती हो आया था । चेहरा उसकी आंखो में दमक उठा ।

लडके की घूरती आखो की चमक महसूसते हुए बोला वह, 'यह तो सब ठीक है । पर मैं शादी नही कर सकता ।' उसने मुह विगाड कर और ज्यादा असमर्थता व्यक्त की ।

लड्का गम्भीर होकर वोला, 'तो फिर क्या किसी परीजादी को पसन्द करना है ।'

'पसन्दगी की बात नही । मेरे चाचा ही अपनी मरजी से मेरी शादी करेंगे ।'

लडके के चेहरे से सहसा गम्भीरता गायब हो गयी । बदले में पहले से भी कही अधिक चमक उग आयी । प्रसन्न हो उठा ।

'तुम्हारे चाचा से तो मैं निपट लूगा,' लडका उसके कधे पर हाथ रखता इस तरह बोलने लगा, जैसे वह लगोटिया यार रहा हो, 'यह तो बताओ कि लडकी पसन्द भी है या नहीं ? और शादी कर लोगे न ?'

उसने बडी मासूमियत से उत्तर दिया, 'मान लो मैंने कह दिया, लडकी पसन्द है ! इससे क्या होता जाता है ?'

'वस ।' लड़के ने तपाक से कहा, 'सब कुछ हो जायेगा । अव तुम्हें कुछ कहने की जरूरत नही । मैं तुम्हारे से यह बात ही कहलवाना चाहता था कि लडकी तुम्हें पसन्द है !'

'क्यों ?' उसने आश्चर्य के साथ पूछा ।

लड़का एक खिसियानी हँसी हँसकर बोला, 'बताता हू !'

'जल्दी बताओ !' वह जानने को एकदम उत्सुक हो गया था ।

लडके ने दबी-सी आँखो से देखते हुए टेविल पर रखे गिलास के पानी को गले मे गटागट उतार लिया ।

उसे लगा, जैसे लडका एक रहस्यवाली बात कह सुनायेगा । वह सुनने के लिए निश्चिन्त हो कुर्सी पर फैल-सा गया ।

तभी लड़का किसी से हाथ मिलाने के अन्दाज में उठा । पलटकर जब उसने देखा तो पाया कि उसके चाचा के साथ 'वही लडकी' चली आ रही थी ।

पास आकर, चाचा उसे देख मुसकराये । वह भी साथ-की-साथ हलके-से मुसकरा गया, जैसे वह लडकी को चाचा के साथ देख, सब कुछ समझ गया हो !



पाषाण भी बोलते थे

सतीश 'अभागा'



जी हां, पहले पाषाण भी हमारी भांति बोलते थे, देखते थे व सुनते थे, लेकिन आज वे सुषुप्तावस्था में हैं। कोई उन्हें बोलते नही देखता। इसका एकमात्र कारण है आपसी वैमनस्य व ऊच-नीच जैसी कुत्सित भावना का प्रभुत्व।

भवन-निर्माण का कार्य बडी द्रुतगति से चल रहा था। कारीगरो के अनुभवी हाथ पाषाण की बेडौल आकृतियो को मनचाही आकृतियो में ढालकर उन्हें चिनाई के सर्वोच्च पद पर आसीन कर रहे थे।

पाषाण—चद बालू की रश्मियों के सामजस्य से बना प्रकृति का कठोरतम रूप! अपने भाग्य पर फूला नही समा रहा था मानो स्वय अपने ऊपर इठला रहा हो। पडोस के एक जीर्ण-शीर्ण भवन में लगी पाषाण रश्मियो ने उसकी इस बेहताशा खुशी का कारण पूछा . 'क्यो भई, आज तो बहुत खुश नजर आ रहे हो, क्या बात है ?'

प्रत्युत्तर में नवीन भवन की पाषाण राशियो ने कहा · 'देखते नही, आज हमें गौरव प्रदान किया जा रहा है। अव समाज में हमारा स्थान उच्च हो जायेगा और हां, तुम लोग कौन हो, कहीं देखा अवश्य है, परन्तु याद नही आ रहा ?'

प्राचीन · 'ठीक कहते हो भाई, अपने भाइयो को भी नही पहचानते ?'

नव · 'भाई ! (विस्मय से ठहाका लगाने लगते है ।)

प्राचीन 'हां, तुम्हारे पूर्वज, तुम्हारे भाई ।'

नव · 'पर हमारे पूर्वज भाई तो कोई नही थे। हम ही सर्वप्रथम मा की गोद से विलग हुए है ।'

प्राचीन · 'जरा स्मरण करो, तव तुम्हे विदित होगा कि हम ही ···'

नव . (सोचने का उपक्रम करते हुए) 'नहीं भाई, हमे तो कुछ भी याद नहीं आ रहा। हां, निर्जनता अवश्य हमारी सहचरी रही है जिसे हम वही छोड आये है ।'

प्राचीन 'हां, तुम्हे याद भी कैसे आ सकता है ? उस समय तुम दुधमुंहे वच्चे ही तो थे। खैर अव हम सोने जा रहे है। अच्छा विदा !'

यह कहकर उन्होने सदैव के लिए आखें मूद ली। आखो की कोर से चूने व राख के मिश्रित गारे की दो बूदें छलक पडी, मानो वे भी अपने भाग्य पर आंसू वहा रही हो। प्रतिद्वन्द्वी हर्षातिरेक से ठहाका मारने लगे।

कुछ दिन इसी प्रकार व्यतीत हो गये, लेकिन फिर वे न उठे। नव उनके उठने की वाट जोह-रहे थे। आखिरकार एक पाषाण वोला, 'चलू देखू, क्या मामला है ?' वह आया तो लौटकर नही जा सका। दूसरे भाई भी आये, लेकिन वे भी लौटकर नही जा सके। तव नवीन पाषाणो को विदित हुआ कि वास्तव मे ये ही हमारे पिछड़े हुये भाई है, क्योकि प्राचीन पाषाण राशियों का हृदय आईने के सदृश्य स्वच्छ व निरकलंक था, जिसमे देखने पर उन्हें अपना प्रतिविम्व दिखाई पडा तो वे आत्मग्लानि से अपनी वाक-शक्ति खो वैठे।

आज भी यदि कोई दो पाषाणो को वुलवाने का असफल प्रयास करता है तो उनके अन्तरतम से एक आवाज आती है, 'हमे तग मत करो, हम सो रहे है !'



एक सत्य-कथा

परम वीर पीरूसिंह

रानी लक्ष्मीकुमारी चुण्डावत

हमारा देश अंग्रेजो की पराधीनता मे था। पराधीनता की बेडियो से मुक्ति दिलाने को हमारे देशवासी जूझ रहे थे। बरसों तक आजाद होने के लिए हम लडाई लडते रहे। नौजवान क्रान्तिकारी थे, उनका विश्वास था तलवार के बल पर आजादी हासिल करने में। गाधीजी के नेतृत्व मे कांग्रेस अहिंसा के युद्ध मे विश्वास करती थी। हमारे मुल्क के लोग स्वतन्त्र होने को छटपटा रहे थे। आखिर हिन्दुस्तान आजाद हुआ। आजादी का दिन घोषित हुआ १५ अगस्त १९४७। आजादी तो मिली, मगर देश के दो टुकडे होकर। पाकिस्तान और हिन्दुस्तान, दो हिस्सो में देश बट गया।

इस बटवारे के बुरे नतीजे निकलने ही थे। जो मुल्क जाति के आधार पर टुकडे कर दिया जाय, उसके शुभ परिणाम निकल ही नही सकते। बटवारे के साथ कई समस्याओं ने जन्म लिया। दोनो देशों के बीच सीमा-रेखा खीचने में भी समय लगता ही है। वह सीमा-विवाद भी पैदा होना ही था। इधर

पांच सौ के लगभग राजा लोग थे। अंग्रेजो ने देश को आजाद तो किया मगर राजाओ के द्वारा झगड़ा पैदा कराने की चाल भी चलते गये। राजाओं की मर्जी पर छोड दिया गया उनके राज्यो का भविष्य। वे चाहे जिस देश के साथ मिलें। इच्छा हो तो अपने राज्य को स्वतन्त्र रखें।

इन राज्यो में कश्मीर भी था। दूसरे राजा लोगों ने तो अपने राज्यो को भारत के साथ मिलाने की सहमति दे दी, लेकिन कश्मीर-नरेश ने कोई फैसला नहीं किया। कश्मीर की स्थिति भूगोल की नजर से बडी विचित्र थी। वे पशोपेश में थे कि किधर मिलें। यो भौगौलिक नजर से कश्मीर का बडा महत्त्व है, सात देशों की भू-सीमाए इस राज्य से मिलती हैं। इसकी इस महत्ता को देखकर पाकिस्तान ने कश्मीर राज्य पर हमला कर दिया। जब हमलावर राज्य में घुसे और कई स्थानों पर कब्जा कर लिया, तो कश्मीर के राजा घबराये। उन्होने भारत में कश्मीर को मिलाने की घोषणा कर दी। तुरन्त भारत की सेनायें कश्मीर को मुक्त कराने को दौड़ पडीं। पाकिस्तानी सेना के साथ कसकर मुकाबला किया। यह स्वतन्त्र भारत का पहला युद्ध था अपने देश की रक्षा के लिये। इस युद्ध मे हमारे जवानो ने बड़ी उमग और जोश के साथ कश्मीर की सफेद घाटियों को अपने खून से लाल कर दिया।

राजस्थान के जवान युद्ध करने मे, बलिदान देने में विश्वविख्यात रहे हैं। इस अवसर पर वे पीछे कैसे रहते! हवलदार मेजर पीरूसिंह ने इस मौके पर बडी बहादुरी दिखाई। जो अद्भुत धीरज और वीरता उन्होने दिखाई, उस पर उन्हें परम वीर की उपाधि से अलकृत किया गया। यह चक्र उसे दिया जाता है जो वीरता, पराक्रम और कर्त्तव्य-पालन मे ऊंचे काम करता है।

पीरूसिंह पहले राजस्थानी थे और फिर भारतीय। इनका जन्म राजस्थान के शेखावाटी इलाके में हुआ था। शेखावाटी का झुझनू जिला वीरों को जन्म देने में प्रसिद्ध रहा था, और आज भी है। इस जिले के लोग बडी सख्या में भारतीय सेना में है। यहां के राजपूत जाट और मुसलमान कायमखानी सैनिक बनने में अपना गौरव समझते है, और सेना में भर्ती होने का इन्हें बड़ा शौक है। शायद ही ऐसा कोई परिवार हो जिसमें कोई सैनिक न हो। यही परम्परा इस जिले की सदा से रही है।

राजस्थान के बेरी गांव में राजपूती किसान परिवार में १९१८ के मई मास में पीरूसिंह का जन्म हुआ। पिता का नाम था लालसिंह और माता का

जडाव कवर। पीरूसिंह माता-पिता के चौथे पुत्र थे। बचपन में बडे नटखट थे। छ साल की उम्र में उन्हे वहां की प्राईमरी स्कूल में पढ़ने को भेजा गया। पढने में इनका जी नही लगा। कभी जाते, कभी नही जाते। पिता ने एक बार डांटकर भेजा तो स्कूल चले तो गये, पर वहां साथ पढनेवाले एक बच्चे से झगड़ा हो गया। दोनो बच्चे झगडने लग गये। वहीं क्लास में गुत्थमगुत्था हो गये। मास्टर ने पीरूसिंह का कान पकड़कर थप्पड मारा। पीरूसिंह को गुस्सा आ गया, स्लेट उठाकर अध्यापक के मुंह पर दे मारी, और भागकर घर आ गये। उसके बाद कभी स्कूल नही गये। खेती-बाडी के काम में लग गये। शरीर से मजबूत थे ही, कसकर खेत में काम करते। हल चलाते, फसल काटते। रेत के टीबो पर दौड़कर चढना उन्हें अच्छा लगता। कई-कई मील पैदल चलना सहज था उनके लिये। बन्दूक चलाने के पक्के शौकीन थे। देशी बन्दूक चलाते और कमाल का निशाना था उनका। बारूद ज्यादा भरने से एक बार बन्दूक की नली फट गई। नली फटने से वे जखमी हो गये। ठोडी पर गहरी चोट लगी। उन्हें साहसी काम करने में मजा आता। परिश्रम करने का उन्हें शौक था। उनके खास गुण थे हिम्मत और निडरता। इन्ही गुणों के कारण वे गांव के नौजवानो के नेता बन गये। कोई काम होता, आगे रहते। किसान का काम करते, किसान की पौशाक पहनते। वह सैनिक बनने के सपने तो बचपन से ही देख रहे थे। अठ्ठारह साल की उम्र होते ही वे फौज मे भर्ती हो गये। उन्हें पजाब रेजीमेंट में भेज दिया गया। सेना मे भर्ती होते ही उनके नेतृत्व के गुण उभरकर सामने आने लगे। सेना में इस प्रकार के गुणो की बड़ी कद्र की जाती है, और ऐसे ही व्यक्ति की पदोन्नति जल्दी होती है। भारतीय सेना की शिक्षा की दूसरी कक्षा और दूसरे इम्तिहान उन्होने अच्छे नम्बरो से पास कर लिये। शीघ्र ही लान्सनायक बनाये गये। हमारे देश की उत्तर-पश्चिमी सीमा और वजीरस्थान के पास लडाइयां लडी। वहां उन्होंने अपनी योग्यता दिखाई। नायक बनाये गये, फिर हवलदार बना दिये गये। १९४५ मे पीरूसिंह कम्पनी हवलदार मेजर बन गये।

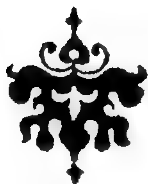
सन् १९४७ का साल था। आजादी मिले दो महीने ही हुये थे कि अक्टूबर के आखिरी सप्ताह में जम्मू-कश्मीर में युद्ध भडक उठा। पाकिस्तान के कबाइलियो ने पूरे जोर-शोर के साथ कश्मीर पर हमला बोल दिया। पांच नवम्बर को राजपूत राइफल्स को हवाई जहाज से एकदम कश्मीर भेजा गया। इसी में पीरूसिंह थे।

राजपूत बटालियन ने बड़े वेग से दुश्मन पर हमला किया। उन्हें अपनी तकलीफो की परवाह नही थी। उनके आगे भारत के गौरव का सवाल था। पीरूसिंह इन हमलो में हमेशा आगे रहते। साथियों के उत्साह को बढ़ाते रहते। अगम पहाड़ो में, जहां बर्फ की टोपियां पहने पहाड़ी चोटिया आकाश छूती है, पीरूसिंह धैर्य के साथ आगे बढ़ते रहे। एक उद्देश्य था दुश्मन को मार भगाना। बाज की भांति झपट्टा मारते हुये इन्होंने पीरखण्डी पहाड़ी पर कब्जा कर लिया।

उधर रिछमारगली को खतरा बढ़ता जा रहा था। ताजा कुमक की जरूरत थी। राजपूत राइफल्स को फौरन टिथवाल पहुचने की आज्ञा दी गई। वहां पहुचते ही दुश्मन को हटाने का हुक्म मिला। पीरूसिंह दारापाडी पहाडो के वन्नेत्राल रिज से दुश्मन को हटाने को आगे बढ़ा। बड़ा विकट स्थान था। ऊंची-ऊंची पहाड़ियां, चट्टानें! वहा तक पहुचना भी आसान नहीं। पीरूसिंह ने अपना मोर्चा जमाया। जगह इतनी तग कि एक प्लाटून के सैनिकों से अधिक रहा ही नही जा सकता। पीरूसिंह की प्लाटून इस कम्पनी की सबसे बढिया प्लाटून मानी जाती थी। ऐसे सकट और कठिन स्थान पर चुने हुये अच्छे सैनिको को ही लगाया जाता है। युद्ध की देवी का नियम है सर्वश्रेष्ठ की बलि लेना। हमला करने में सबसे आगे इस प्लाटून को रखा गया। इस प्लाटून मे सबसे आगे रहा पीरूसिंह। ज्यों-ज्यों ये आगे बढने लगे, इन पर गोलों की बरसात होने लगी। दायें और बायें दुश्मन ने एम० एम० जी० की तोपो से गोलों की झड़ी लगा दी। इधर तोपें आग बरसा रही थीं, उधर खदकों से हथगोलो के घोलो की बौछार हो रही थी। एक-एक इंच आगे बढना यमराज से लोहा लेना था। पीरूसिंह के साथी घायल हो रहे थे। साथियों की लाशें लुढककर गिर रही थीं। पीरूसिंह यह देखकर भी निश्चल थे। हिम्मत हारने का सवाल क्या, जोश बढ रहा था। साथियो को मर्दानगी दिखाने का जोश दिला रहे थे। हिम्मत बढाने के नारे लगा रहे थे। मर मिटने को उत्साहित करते जा रहे थे और आगे बढ़ते जा रहे थे। सामने से, ऊपर से, आगे से और बायें से गोले-गोलियो की वर्षा! कठिन घाटी! विकट पहाड़! फिर भी सीना ताने, गोलियो का स्वागत करता पीरूसिंह शेर की तरह आगे बढा। वे शत्रु पर वार करने को इतने उत्तेजित हो रहे थे कि उन्हें पता ही नहीं चला कि वह अकेले रह गये थे। सारे साथी रणक्षेत्र में सो गये। गोलियों को चीरता पीरूसिंह जा पहुचा उस स्थान पर जहां से एम० एम० जी० गोले बरसा रही

थीं । मारे क्रोध के बावला हो गया पीरूसिंह । शत्रु-सैनिको को अपनी स्टेनगन से भून दिया । गोले चलानेवाले एक को भी जिन्दा नही छोडा । दुश्मन धरती पर सो गया । गोलियो का चलना बन्द हो गया ।

तब पीरूसिंह को पता चला, उनके सारे सैनिक मारे जा चुके है । वह अकेले है । तब भी कोई चिन्ता नही उन्हें । आगे बढते रहे, अकेले आगे बढते रहे । शरीर से रक्त टपक रहा था । जगह-जगह घाव हो गये थे । सिर पर लगी चोटो से खून बह-बहकर आखो में गिर रहा था । वह मतवाला हो झूम रहा था । चुन-चुनकर शत्रु पर वार कर रहा था । बहादुर पीरूसिंह खाइयो पर हतगोले बरसा रहा था । सधे हाथों से पीरूसिंह ने एक खाई पर हथगोला फेंका । उधर से एक गोली आई । पीरूसिंह के ललाट को आकर लगी । पीरूसिंह ने धडाम से नीचे गिरते हुये देखा, एक खाई मे से विस्फोट के साथ धुंआ निकलते हुये । अपूर्व सतोष के साथ प्राण निकले । उनका आखिरी हथगोला दुश्मन की खाई को उडा रहा था । धन्य है वह वीर जिसने अपने प्राणो की बलि देश के लिये दी !



एक स्मृति-कथा

उड़ती धूल की धुंधली-सी याद

महेशकुमार पुरोहित



उस दिन टी स्टाल पर बैठा अपने कुछ यार-दोस्तों के साथ चाय का इन्तजार कर रहा था। मेरी नजर सामने बैठे एक मध्यावस्था के आदमी पर जा पड़ी, जो शायद पानी के लिए अपने पासवाले आदमी से पूछ रहा था कि पानी कौन पिलाएगा? उस सज्जन आदमी के कहने पर नौकर ने पानी की छोटी केटली उठाई और देखते-ही-देखते उस भले आदमी ने पूरी केटली का पानी ओक लगाकर पी लिया। नौकर उसकी ओक और उनके पानी पीने के ढग को देखकर उसका मजाक उड़ाने लगा, तो मुझसे नहीं रहा गया, क्योंकि उसकी वेश-भूषा व बोल-चाल से मालूम पड़ता था कि वह राजस्थान का एक श्रमिक किसान है जिसे कलकत्ते जैसे शहर में आने का शायद यह पहला और अन्तिम मौका मिला था। 'जाट' मेरी तरफ कृतज्ञता से देखने लगा, मेरे मुह से अनायास ही निकला, 'चौधरी राम-राम !' उसके चेहरे पर चमक-सी आ गई, उसकी आंखों में कुछ अजीब-सी मुस्कान तैर गई, उसने गीले हाथ को मुंह पर फेरते हुए राम-राम का जवाब दिया।

छोकरा चाय का प्याला हाथ में दे गया, उसके उठते धुएं में मुझे अजीब-सी रेखाए दिखाई देने लगीं। रेखाए स्पष्ट होकर कुछ वैसी ही बनने लगीं जो मुझे उस दिन कितनी अच्छी लगी थी जब मैं अपने एक ग्रामीण साथी के साथ उसके गांव में गया था उडती धूल, तपता सूरज, बाड की लम्बी-लम्बी रेखाए, खेतों से आती बेहद ही विचित्र-सी आवाज, चटकते बाजरे की सुरीली धुन...गांव के रास्तो पर चलते समय मैं जरा कांटो व झाडियो से, बच रहा था, पर मेरा साथी बडे लापरवाह ढग से चला जा रहा था। गांव के कुछ करीब आने पर मुझे गीतों के स्वर सुनाई दिए। ज्यो-ज्यो हम गांव के निकट आते गए स्वर और भी ज्यादा स्पष्ट होते गये। मैंने उससे पूछा कि ये गीत कैसे गाये जा रहे हैं ? उसने बड़े उत्साह के साथ बताया कि आज गांव का कोई नौजवान अपनी छुट्टियां बिताकर वापिस सीमा-सुरक्षा के लिए जा रहा है। मैं आश्चर्य से उसकी तरफ देखने लगा तो उसने बताया कि जब भी कोई सैनिक अपनी छुट्टी मनाने के लिए घर आता है और छुट्टी पूरी होने पर वापिस जाता है तो स्वागत और वीरतापूर्ण विदा-गीत गाने का हमारे यहा रिवाज है। अभी वह अपनी बात पूरी कर भी नही पाया था कि उसे दूर जाते हुए कुछ आदमी दिखाई दिए। वह मुझे हाथ के इशारे से रोकता हुआ भाग चला और उसने जोर से ऊची आवाज लगाई। उन जाते हुए आदमियो में से एक ने उसकी आवाज का जवाब दिया और अगले ही मिनट वह सैनिक से गले मिल रहा था। थोडी देर बाद मैं भी उनके समीप पहुच गया। मैंने शिष्टाचारवश सिर्फ हाथ मिलाया। उस नवयुवक ने मेरी तरफ इशारा करके विदा ली। हम दोनो साथ-साथ चले आए। थोडी दूर आए होंगे कि रास्ते चलती दो-तीन गायो को उसने अजीब नाम से पुकारा। गायो ने उसकी आवाज पहचान ली थी, तभी तो उन्होंने रभाकर प्रत्युत्तर दिया।

उस दिन मैंने जाना कि राजस्थान के गांव भारत के अन्य गांवो से कम नही। यहां पर लोगों में जो प्यार, जो अपनत्व आप एक बार पा लेंगे उसे शायद जिन्दगी के उतार-चढाव मे भुला नहीं सकेंगे। मैं शायद गांव के बच्चों के लिए नया था, इसलिए वे भागकर आपस में एक झुण्ड बनाकर इकट्ठे हो गये और तालियां बजाने लगे। आते-जाते आदमी राम-राम कहकर मेरी तरफ स्वागत भरे अन्दाज से मुस्कुराते, औरतों को न जाने कैसे कोई अलग आभास-सा हुआ कि वे छतो पर, घरो की चौपाल मे खडी होकर अपनी दो अगुलियों से लम्बा-सा घूँघट खीचकर देखने लगी। गाँव के कुत्ते भी शायद खुश थे। तभी तो वे भौंकने लगे थे।

घरो से फीका-फीका धुआं उठ रहा था। मक्खन निकालने की जलतरंग-सी सुनाई पड़ रही थी। घर का पशुधन अपनी-अपनी आवाज में आपस मे बातें कर रहा था और ऐसे में मैंने देखा—कान तक मूँछें, सिर पर फेटा, बांकी धोती, चमकती आंखें और शरीर मे अजीब फुर्ती वाले पुरुष; घाघरा, कुडती और कांचली पहने व सिर पर लुगड़ी रखे वहां की औरतो की प्राकृतिक सुन्दरता को देखकर हमें परियों की काल्पनिक सुन्दरता भी तुच्छ जान पडती है। वहां के बच्चे एक अलग तरह का कपडा पहने रहते है जिसको वहां की भाषा मे गूगड़ी कहते है जो मस्त हाथी की सूण्ड की तरह इधर-उधर झूमती रहती है। मोठ बाजरा की रोटी के साथ छाछ व रावडी का अमृत-तुल्य भोजन। कडी मेहनत करनेवाले ये लोग सिर पर छावडी तक रखने मे नही शरमाते। अपने बुजुर्गो के उस उपदेश को वास्तविक जीवन में ये लोग उतारते है 'मोटो खाणो मोटो पैरणो ओ वड़का रो उपदेश'। सम्पूर्ण गांव जैसे एक परिवार हो, हर व्यक्ति जैसे एक-दूसरे के लिए जीता है, शहरो की औपचारिता वहां तुच्छ जान पड़ती है। स्वार्थ जैसी चीज वहां का ग्रामीण अभी तक नही जानता। समय पड़ने पर अपने जीवन तक को वे एक-दूसरे के लिये होम देते है। अतिथि-सत्कार उनके लिये देवता की पूजा की तरह है। भूरे-भूरे टीबे जिनकी रेत पीसे हुए सोने-सी लगती है, ऊंचे-ऊंचे डूगर जिसकी रक्षा के लिये खडे रहते है, वहां का जन-जीवन कितना सुखी हो सकता है जब हाथ में चिलम लिये हुए किसान के पीछे उसकी पत्नी खेत की तरफ चल रही हो।



अलका

रमादेवी



रात्रि के १२ बज गये थे, लेकिन लाख प्रयत्न करने पर भी अलका को नींद न आ सकी। वह उठी और सोचने लगी—क्या करूं, क्या न करूं ? उसने सोचा कि कुछ लिखू। वह टेबल पर जा बैठी और कलम हाथ में ली। लेकिन क्रमबद्ध विचार न होने के कारण वह उन्हें लिपिबद्ध न कर सकी। अजीब तरह का तूफान उसके मानस में उठ रहा था। जिस प्रकार भयकर आंधी से सरोवर में लहरें आ-आकर, तट से टकराकर वापस चली जाती हैं, उसी प्रकार विचारों की लहरें उसके मानस-तट से टकराकर विलीन हो हो जाती थीं। उसने कलम रख दी और सोचने लगी। सहसा उसकी दृष्टि अलमारी पर रखे पुलन्दे पर जा पड़ी। उसने उसे खोला और कागजो की उलटा-पुलटी करने लगी। किसी को पढ़कर उसके होठों पर मुस्कराहट खेलने लगती व किसी को पढ़कर उसकी पलकें

भींग जाती थीं। अन्त में उसकी नजर १०-१२ वर्ष पूर्व लिखी 'पासवान' नामक कहानी पर पड़ी और वह उसे पढ़ने लगी। 'टन्न' से घड़ी ने तीन बजाये और वह चौंक पड़ी। उसने सब कागजों को एकत्रितकर, पुलन्दा बना, वापस आलमारी पर रख दिया और पलंग पर जा लेटी। लेटे-लेटे ही उसने उस कहानी को पढ़ना प्रारम्भ कर दिया और वह उसमें तल्लीन-सी हो गई। बीच-बीच में वह कॉपी को आंखों के सामने से हटाकर कुछ सोचने लगती और फिर पढने लगती थी। इसी प्रकार उसकी आंख लग गई। जब उसे गहरी नींद आ गई तो उसकी नौकरानी जानकी, जो चुपके-चुपके अपनी मालकिन की मनोदशा का अपनी बुद्धि के अनुसार विश्लेषणकर रही थी—उठी, और लाइट आफ कर, अपने कमरे में सोने चली गई।

अलका, असाधारण प्रतिभाशालिनी, उच्च शिक्षा प्राप्त, एक ऐसी अविवाहिता युवती थी, जो पुरुषों के साथ कंधे-से-कधा भिड़ाकर चलने में पूर्ण सक्षम थी या यों समझिये कि कार्य-क्षेत्र में वह उनसे तनिक भी पीछे नहीं थी। किन्तु उसका नाम अखबारी दुनिया तक नहीं पहुच पाया था। इसलिये नहीं कि उसने ऐसे कार्य न किये हों, बल्कि इसलिये कि उसका विश्वास ठोस एवं रचनात्मक कार्य करने में ही था। अखबारी दुनिया के झूठे दिखावे और प्रचार में नहीं था।

सुबह के नौ बज चुके थे। अलका के कमरे में धूप फैल चुकी थी, किन्तु अलका अभी तक मीठी नींद सो रही थी। जानकी ने खिड़की का पर्दा हटाते हुए पुकारा, 'बाईजी, उठो। नौ बज गये हैं और रश्मि बाबू आपका इन्तजार कर रहे हैं!'

यह सुनते ही अलका हड़बड़ाकर उठी और उसने आंखें मलते हुए जानकी से कहा, 'तू जाकर उन्हें बैठक के कमरे में बिठा। मैं अभी आती हू। और सुन, चाय भी वहीं ले आना।'

'मैं कमरा खोलकर उन्हें बिठा आई हू,' जानकी ने आश्वस्त किया।

'तू चाय ले आ, और कह दे, मैं अभी आती हूं,' कहते हुए वह गुस्लखाने की ओर तेजी से चली गई।

जानकी ने जाकर रश्मि बाबू से कहा, 'बाईजी रात को चार बजे सोई थीं, इसीलिये इतनी देर तक सोती रहीं। वर्ना वे तो हमेशा पांच बजे ही उठ लेती हैं। वे अभी आती हैं।'

रश्मि बाबू ने आश्चर्य की मुद्रा बनाते हुए पूछा, 'चार बजे तक क्या करती रहीं ?'

'कुछ लिखती-पढती रहीं,' जानकी ने सरलता से कहा, 'आप जैसे भाई होकर उनकी शादी नहीं करा देते ? उनका अकेला जीवन है। आखिर इसी तरह से काटती है ! हमारी बाईजी तो साक्षात् देवी हैं, और...'

बस वह इतना ही कह पाई थी कि अलका आ गई। बोली, 'क्या बकवास कर रही है ? मैंने चाय के लिये कहा था, वह तो न लाई और व्यर्थ की बकझक कर रही है।'

'बाईजी, चाय बिलकुल तैयार है। मैं अभी ले आती हू,' कहती हुई जानकी फुर्ती से चली गई।

'रश्मि भैया, मुझे क्षमा करना।' अलका कुछ लजाते हुए बोली, 'मैं आपसे नमस्ते करना ही भूल गई। यह जानकी बडी नटखट है। काम कम करती है, और बातें अधिक।' कहते हुए वह बराबरवाले सोफे पर बैठ गई।

रश्मि बाबू ने मुस्कराते हुए कहा, 'अच्छी ही बात है कि वह बातूनी होने के साथ-साथ हसोड़ भी है। तुम्हारा मन बहलाती रहती है। इसमें बुरा क्या है ? हां, यह तो बताओ कि रात को क्या कोई उपन्यास लिख डाला, जो चार बजे तक सोई भी नहीं ?'

अलका समझ गई कि यह सब जानकी की ही करामात है। उसी ने रश्मि को सब कुछ बताया है। अलका कुछ सभलती हुई-सी बोली, 'भैया, मुझे कहां इतना अच्छा लिखना आता है, जो उपन्यास का समुद्र मथ डालती ?'

रश्मि बाबू हंसते हुए बोले, 'समुद्र मथने की बात खूब कही। जब समुद्र मथा गया था तो उसमें से नवरत्न उत्पन्न हुए थे। उपन्यास नही।'

'तो उन रत्नो की सन्तान 'उपन्यास' समझ लो।' कहकर अलका ने आंखें नीची कर लीं।

'अच्छा, सच बताओ रात को क्या लिखा ?' रश्मि ने फिर पूछा।

'लिखा तो कुछ नहीं। हां, कभी शौक था, कहानी, कविता व गद्य-काव्य लिखने का। रात को नींद न आने से उन्ही की उलटा-पलटी करती रही।'

रश्मि ने दातो तले अंगुली दबाते हुए कहा, 'तुम तो छुपी रुस्तम निकली। मैंने तो आज तक तुम्हारी कोई रचना न कभी देखी, न पढ़ी और न सुनी।'

'बात दरअसल यह है भैया,' अलका ने अपनी स्थिति बतलाते हुए कहा, 'मैंने कभी किसी को अपनी रचनाओं का अवलोकन नहीं करने दिया। और न पत्रों में प्रकाशित करवाई। बस, हृदय के उद्‌गार कागजों पर और कागजों का पुलन्दा अलमारी पर।'

रश्मि बाबू हठ करते हुए से बोले, 'मैं तो आज तुम्हारी रचनाओं को पढ़े बगैर नहीं जाऊंगा।'

इसी समय जानकी चाय लेकर आ गई। अलका मेज की ओर बढ़ी और जानकी से कहा, 'जा वे भुजिये ले आ, जो मैंने कल बनाये हैं।'

जानकी भीतर जाने को हुई कि रश्मि बाबू ने टोका, 'क्या अब नाश्ते का समय है? दस बज गये हैं। मैं नाश्ता करके आया हू। अगर तुम्हें खाना हो तो मंगा लो। मैं तुम्हारे साथ एक प्याली चाय पी लूगा।'

'तुम जानते हो, मैं केवल चाय पीती हूं।'

रश्मि बाबू ने जानकी से कहा, 'मेरे बजाय तू भुजिये खाना और अलका बहन का कागजों का पुलन्दा भी ले आ।'

जानकी बोली, 'बाईजी के तो कई पुलन्दे हैं। कौन-सा लाऊं?'

अलका हंसती हुई बोली, 'तू पुलन्दा तो मत ला। मेरे पलंग पर एक मोटी-सी कॉपी पड़ी है, वही ले आ।'

जानकी दोड़ी हुई गई और वापस आकर कॉपी रश्मि बाबू के हाथ में दे दी। उन्होंने पन्ने उलटकर देखा तो उसमें धोबी को दिये जानेवाले कपड़ों का हिसाब लिखा था। उन्होने अलका की ओर देखकर कहा 'यही हैं तुम्हारी रचनाए?'

उसने प्याली में चाय डालते हुए नीची नजर से ही कह दिया, 'हां।'

रश्मि बाबू पढ़ने लगे—साड़ी चार, पेटीकोट चार, ब्लाउज......। सुनते ही अलका चौंक पडी, 'यह क्या?'

'तुम्हारी रचनाएँ पढ रहा हू।' रश्मि बाबू ने व्यंग्य से कहा, 'विलायत जाकर बैरिस्टरी पास कर आया, किन्तु ऐसी रचनाएं आज तक नहीं पढीं।'

अलका ने रश्मि के हाथ से कापी छीनते हुए कहा, 'मैं तो जानकी की बुद्धिमत्ता से परेशान हो गई हू। इससे कहो खेत की और सुनती है खलियान की।'

दोनो हस दिये। अलका बोली, 'अभी चाय पीकर मैं खुद ही ले आती हू।'

दोनो चाय पीने लगे। अलका दो घूट चाय गले में उतारकर बोली,

'रश्मि भैया, देखते-देखते जमाना कितना बदल गया है। मैं मानती हूं कि आजादी मिलने पर बहुत कुछ सुधार हुआ है किन्तु बहुत-सी बातों का केवल रूपान्तर मात्र हुआ है, जो समाज के लिये बडा घातक सिद्ध हो रहा है। देश में शिक्षा के साथ जो पाश्चात्य सभ्यता का समिश्रण हो गया है, वह नारी जाति के लिये उत्थान का विषय नहीं है। वरन् पतन का है, जो अभी दृष्टि-गोचर नहीं हो रहा है।'

रश्मि बाबू ने उसे बीच में ही टोका, 'यह तुम कैसे कहती हो अलका ?'

अलका गम्भीरता से कहती गई, 'जब देश गुलाम था, सामन्तशाही हुकूमत थी, उस समय बहु विवाह प्रथा थी। पासवान (रखेल) प्रथा थी, लेकिन जातीयता का प्रतिबन्ध था। जरा सोचिये, एक कुलीन पुरुष अकुलीन महिला को अपनी 'पासवान' याने उप-पत्नी बना सकता था। तब समाज के, जातिवालों के, मजहब के ठेकेदारो के सिर में दर्द नहीं होता था। वे वर्णसंकर सन्तानों को बर्दास्त कर लेते थे। उन्हें जाति से बहिष्कृत नहीं किया जाता था। केवल अन्तर्जातीय विवाह ही अपराध था, जिसकी सजा भी भयकर होती थी। यह कैसी विडम्बना थी !'

इतना कहकर अलका कुछ रुकी, मानों वह अपने मानस के तूफान के वेग को सम्भाल रही हो। रश्मि बाबू अपलक अलका के मुख मण्डल की ओर देख रहे थे। वे बोले कुछ नहीं। जिज्ञासा ने उनके मुह पर ताला लगा दिया था। अलका ने चाय का प्याला खालीकर मेज पर रख दिया और स्वस्थ होती हुई-सी आगे कहने लगी, 'एक नारी परिस्थितिवश, संस्कार या मानवीय दुर्बलतावश, स्वेच्छा से या बाध्य होकर अपना सर्वस्व एक पुरुष को दे दे; और उसे सम्मान न मिले ? उसे पत्नी का अधिकार न मिले ? उसे 'पासवान' या उप-पत्नी के गर्हित सम्बोधन से पुकारा जाय ? उसके बच्चों को अपने वास्तविक पिता को पिता कहने का अधिकार न मिले ? यह अन्याय नहीं था तो और क्या था ? फिर भी बेचारी अबला नारी सब कुछ सहती थी।'

अलका कुछ क्षण फिर रुकी। उसका स्वर व्यक्त करता था कि उसके अन्तस् का ज्वालामुखी विस्फोटक स्थिति में पहुचना चाहता है। रश्मि बाबू मन्त्रमुग्ध हो उसके चेहरे पर आने-जानेवाले भावों से उसके आन्तरिक दर्द की भाषा को पढ़ने का प्रयास-सा कर रहे थे। अलका अपने को सयत कर फिर कहने लगी, 'इसके अतिरिक्त एक वर्ग और था और वह आज भी है, जिसे पतित नारी या वेश्या कहा जाता है। मैं पूछती हू, उनको पतित किसने बनाया ? क्या

आकाश या पाताल की किसी अलौकिक शक्ति ने ?'

'नही, वे हमारे ही भाइयों के गुनाहों की प्रतीक है।' रश्मि बाबू ने समर्थन के स्वर में कहा।

'तो फिर वे पतिता क्यो हैं ? वे भी हमारे ही पूर्वजो की सन्तान है ! अन्तर केवल इतना ही है कि पत्नी से जो सन्तान उत्पन्न होती है, वह सामाजिक कानून 'विवाह-सूत्र' में बंधने पर होती है और उनके साथ यह कानून लागू नहीं किया गया। जहां तक सन्तान पैदा करने का प्रश्न है, वह कानून जो पत्नी के साथ पूरा किया जाता है, वही अन्यत्र भी। उसमे कही कोई भेद नहीं। फिर भी मानव इतना गिरा हुआ क्यो सिद्ध होता जा रहा है, जो अपनी कोई जिम्मेदारी नही समझता ? उसके पापाचार, वासना पूर्ति एव मनोरंजन की सजा वे नारियाँ भोग रही हैं। उच्चवर्ग को सतान होते हुए भी वे अपनी हीनावस्था के कारण सिर नही उठा सकतीं। क्या आज का आजाद भारत भी इस ओर ध्यान नहीं देगा ? आज का शिक्षित नारी-जगत भी सोया हुआ है। वह भी उन्हें घृणित मानता है। कैसा आश्चर्य है ? वे कोठे नारी जाति पर कलंक के प्रतीक है, और नारी वर्ग हंसता है !'

भावावेश में अलका और भी न जाने क्या-क्या कह गई। रश्मि बाबू ने बातों का रुख बदलने की असफल चेष्टा की। वे बोले, 'तुम कह रही थी न कि आजादी मिलने पर देश में सुधार जरूर हुआ है, लेकिन बहुत-सी बातों का केवल रूपान्तर ही हुआ है। वह किन-किन बातों में पाती हो ?'

अलका बोली, 'यह भी सुनना चाहते हो, या मेरी रचनाएं पढोगे ?'

रश्मि बोले, 'वह तो पढूंगा ही, लेकिन तुम्हारी बातों में बड़ा आनन्द आ रहा है।'

अलका टालने की कोशिश करती हुई-सी बोली, 'मैंने जो कुछ अभी आपसे कहा, मेरा १०-१२ वर्ष पहले लिखा 'पासवान' निबन्ध का ही अंश था। मैं आपको अपनी यह रचना लाकर दे देती हू। आप स्वयं पढ लेना।'

रश्मि बाबू ने आजिजी के स्वर में कहा, 'तुम तो मूल बात उड़ाये दे रही हो।'

'मैं इसे उड़ा देना ही ठीक समझती हू,' अलका ने गम्भीरता से कहा।

'क्यों ?' रश्मि का प्रश्न था।

'इसलिये कि यह एक कटु सत्य है, और तुम जैसे इंगलैंड रिटर्न बैरिस्टर पर इसकी प्रतिकूल प्रतिक्रिया हो सकती है।' अलका का दृढ़ उत्तर था।

रश्मि ने पुन: आग्रह किया, 'नहीं बहन, ऐसी कोई बात नही होगी। आज मुझे तुमसे बहुत कुछ नया विषय सोचने को मिला है। इसीलिये आगे कुछ और सुनना चाहता हू।'

अलका बोली, 'मुझे क्षमा कर देना भैया। मैं जब कुछ कहना आरम्भ करती हूं तो जुबान रुकती ही नहीं।' और उसने कहना आरम्भ किया, 'यह तो सभी जानते हैं कि अंग्रेज भारत से गये, लेकिन अपनी सभ्यता छोड़ गये। इसके अतिरिक्त आप जैसे धनी-मानी स्त्री-पुरुष विलायत डिग्रियां प्राप्त करने जाते हैं, और उन डिग्रियों के साथ वहां की सभ्यता के ढाँचे में ढलकर भारत लौटते हैं, उसका प्रचार व प्रसार करते है। यह एक आम-सी बात है कि बडो का अनुकरण छोटे करते है। अधूरे ज्ञानवाले उस अनुकरण में रसातल को पहुच जाते हैं। जिस प्रकार आप और बहन ज्योति, साथ-साथ शिक्षा ग्रहणकर विलायत से भारत आये, उसी समय से आप दोनो के प्रत्येक कार्य एक साथ होते है, और अधिकतर एक साथ रहते हैं। आप और ज्योति एक दूसरे को अपना 'फ्रेंड' कहते हैं। यह 'फ्रेंडशिप' क्या भारत की देन है ? जिस प्रकार मैं बहन सम्बोधित की जाती हू, वह क्यों नही ? वह आपको अपार प्रेम करके भी विवाह नहीं करती, और आप भी नहीं करते। इसमें क्या राज है ? देखते नहीं, इस 'फ्रेंडशिप' पद्धति के अन्तर्गत स्कूल और कालेजों में कितने खेल खेले जाते हैं ? कितनी भ्रूण हत्याएं होती हैं और कितने माता-पिता सिर पकडकर रोते हैं ? बस, यही उस 'पासवान' प्रथा का रूपान्तर है। उस प्रथा में फिर भी एक दूसरे को निभाता था। इस प्रथा में तो जब तक फूल में खुशबू रही, सिर चढा रहा। और जब पखुडी बनकर धरा पर आया, भवरा दूसरे फूल की तलाश में 'फ्रेंडशिप' की बाट जोहने लगा।'

अलका एक सांस में कहे जा रही थी और रश्मि बाबू पसीना-पसीना हुए जा रहे थे। अलका की स्पष्टवादिता ने उन्हें मर्माहत-सा कर दिया था। उनका कुछ भी कहने का साहस नहीं हो रहा था। इतने में हार्न की आवाज आई और रश्मि यह कहते हुए उठ खड़े हुए, 'आज एक कत्ल के केश की पैरवी करनी है, मैं फिर आऊंगा।'

पूरा एक मास बीत गया। न तो रश्मि बाबू ही आये और न अलका ही गई। एक रोज जब अलका सुधा के साथ मैटनी शो देखकर घर लौटी, तो उन्होंने मेज पर एक लिफाफा रखा देखा। सुधा की आदत थी कि वह बिना पूछे ही

किसी का भी पत्र पढ़ लिया करती थी। उसने वैसा ही किया और सोफे पर उछल पड़ी। अलका ने पूछा, 'क्या है ? किसका पत्र है ? ऐसा क्या मिल गया ?'

सुधा ने पत्र अलका को थमा दिया। अलका पढ़ने लगी,

'आदरणीय अलका बहन,

हम लोग समान उम्र हैं, लेकिन मैं तुम्हें पूज्य मानने लगा हू। मेरी बैरिष्टरी पर धिक्कार है। मेरी और ज्योति की आंखों पर जो पश्चिमी सभ्यता का चश्मा चढा हुआ था, ज्ञान में अज्ञान छुपा हुआ था, उसका तुम्हारे द्वारा नाश होकर अब हम सच्चे भारतीय दम्पति के रूप में जीवन बिताना चाहते हैं। इतना ही नहीं, हम जैसों के द्वारा समाज में जो कालिमा छा गई है, हम उसका भी नाश करने की प्रतिज्ञा कर चुके हैं ! आओ बहन, आज रात्रि के नौ बजे हम पवित्र सूत्र में बंधने जा रहे हैं। तुम्हारी शुभकामनाओं के बिना यह कार्य अपूर्ण ही रहेगा। अभी तक हम दोनों फ्रेंड थे। अब दम्पत्ति बनकर तुम जैसी पवित्र बहन के सहयोग से भारत में भारतीयता एवं मानवता का अलख जगायेंगे। हो सके तो क्षमा कर देना।

तुम्हारा अपराधी भाई
रश्मिकुमार,

अलका इस अवसर पर रश्मि के घर गई या नहीं, इसका हमें पता नहीं। किन्तु लगभग दो माह बाद 'भारतीय महिला उद्धारिणी संस्था' की अध्यक्षा को कहते सुना कि अलका देवी अब पूर्णतया संन्यासिनी हो गई हैं। उन्होंने अपनी सम्पत्ति देश-हित अर्पण कर दी है और वह रश्मि बाबू के साथ भारतीयता एवं मानवता का प्रचार-प्रसार करने में संलग्न हो गई हैं।



पानी

विश्वेश्वर शर्मा



किन्तु इसी समय राणा ने आंखें खोल दीं और डावडी से बोले, 'पूछ, आधी रात को हाजिर होने का क्या कारण है ?'

डावडी मुजरा करके चली गई। रानी के तन-बदन में आग लग गई। किसी भावी विपत्ति की आशंका से उसका हृदय कांप उठा। फिर भी अपने मनोभावों को छुपाती-सी बोली, 'मैं पूछ लेती हू अन्नदाता! आप पौढें।' और इस 'पौढें' शब्द के साथ ही, मानो रानी के हृदय पर एक असह्य वज्रपात और हुआ, जिससे उसके रोए खडे हो गये। पेशानी पर पसीने की बूंदें उभर आईं। उसे लगा, जैसे वह चक्कर खाकर भूमि पर गिर पड़ेगी ?

इतने में डावडी लौट आई और झुककर मुजरा करने के उपरान्त बोली, 'वह कहता है, अन्नदाता! कि 'रावले ही अरज करूंगा।' मालकों को उसने एकलिंग नाथ की आण दिखाई है, जो एक पल भी देरी की।'

राणा का मुख एकलिंग नाथ की आण की बात सुनकर क्रोध तथा आश्चर्य के मिश्रित भावों से तमतमा उठा। उनका हाथ स्वतः ही अपनी गुर्ज पर चला गया और वह सीधे जनानी ड्योढी की ओर चल पड़े।

'चम्पा…… ! बदामी…… !! सावनी…… !!!'

बेतहाशा रानी चीख पड़ी। पलक झपकते ही तीनों डावड़ियां करबद्ध सम्मुख आ उपस्थित हुई, 'बड़ो हुकम, राणी जी !'

'जाओ, पिछले रास्ते से कुअरपदो के महलों में जाकर कुअर को बुला लाओ। कहना, तुम्हारी मां का जीवन सकट में है, क्षण भर भी देर किये बिना पिछले रास्ते से मुझे आकर मिले……'

चम्पा दौड़ पड़ी, कुअरपदो की ओर।

'बदामी ! तू ड्योढी पर जा। देख, क्या बात हो रही है ?' बदामी ड्योढी की ओर दौड़ पडी और रानी बेतहाशा पलंग पर धम्म से गिर पडी। सावनी ने उसे संभाला।

जनानी ड्योढी के बाहर राज पुरोहित का कामदार करबद्ध खड़ा था। राणा को देखते ही उसने घुटनो तक झुककर मुजरा किया, 'घणी खम्मा अन्नदाता !'

'क्या बात है कामदार ? इतनी रात गये, जनानी ड्योढी के बाहर…' राणा की बात समाप्त होने से पूर्व ही कामदार बोल पडा, 'गजब हो गया पृथ्वीनाथ ! यह पानड़ी मुलाहिजा करें।' और उसने अदब से एक पानडी राणा के हाथों में नजर कर दी। राणा ने उसे पढा और तत्क्षण ही उनकी आंखों से क्रोध की भीषण अग्नि भभक उठी, 'तुझे यह पानड़ी कैसे मिली दयाल…?'

राणा की भीषण आकृति देखकर कामदार दयाल सहम गया। उसके पांव थरथराने लग गये, ओंठ सूखने लग गये और वह बडी कठिनाई से बोला, 'मुझे आज शाम को मेरे ससुराल जाना था पृथ्वीनाथ ! रास्ते में जगली जानवरो के भय से मैंने पुरोहित जी से हथियार मागा। उसी समय महलों में पुरोहितजी के शरोपाव आया, उसमें यह कटार भी थी, पुरोहितजी ने वही मुझे दे दी। घर जाकर कौतुकवश मैंने इसे खोला, तो भीतर से यह पानड़ी निकली। वहीं से सीधा दौड़ा आ रहा हूं अन्नदाता !'

राणा ने उसी समय ताली बजाई। दो नग्न खंगधारी सैनिक नतमस्तक आ उपस्थित हुए।

'जनानी ड्योढ़ी पर पहरा बिठा दो और राज पुरोहित को मुश्कि -बांध लाओ।'

दयाल ! तू मेरे साथ चल।'

राणा अपने दरिखाने के सिंहासन पर जाकर बैठ गये। विचारों का ऐसा प्रबल वेग, क्रोध की ऐसी भीषण आग, ग्लानि की ऐसी दमघोट बदबू उन्होंने जीवन में पहले कभी अनुभव नही की थी······

'······रानी···कुअर······? नहीं-नहीं। ऐसा नहीं हो सकता, ऐसा नहीं हो सकता···' राणा चीख पड़े।

'धीरज रखें पृथ्वीनाथ ! यह समय धीरज खोने का नही। सेवक की अरज है कि उतावली में कहीं पहले की तरह अहित न हो जाय।'

'दयाल······!' ऐसा चीखे राणा कि सारा दरिखाना गूंज उठा।

'हां पृथ्वीपति ! मैं पुरोहित के घर रहता हूं और लाख गुप्त रखने पर भी कई बातें जान ही जाता हू। पुरोहित गरीबदास निर्दोष है, अन्नदाता ! यह सब उसके छोटे भाई चण्डालदास की करतूत है। वह छोटी रानीजी से मिलकर बहुत दिनों से षडयन्त्र कर रहा है माई-बाप ! रूपाले रानीजी के महलो में जिस कुंअरजी को आपने जाते देखा था, वह राजकुमार के कपड़े पहने एक डावड़ी थी मेवाड़-नाथ ! लेकिन आवेश में आकर आपने कुवर सुल्तानसिंह को गुर्ज से मार दिया। आज फिर छोटी रानीजी ने कुअर सरदार सिंह को गद्दी पर बिठाने के लिए···'

'कुंअर सरदार सिंह······? नही-नही। वह ऐसा नही। वह यहां से दूर रहता है। साधु सङ्गति में रहता है। उसके विचार बडे निर्मल, बड़े पवित्र हैं। वह ऐसा नहीं कर सकता···वह ऐसा षडयन्त्र कदापि नही कर सकता दयाल !'

'वह नहीं कर सकते, तभी तो राणीजी ने किया है अन्नदाता !'

राणा की आंखों के आगे अग्नि-पुज नाचने लगे···ओह ! जिस रानी पर वह सबसे अधिक विश्वास करते थे, वही आज उनके प्राणो की ग्राहक बन गई। नहीं-नहीं, यह झूठ है। यह सब किसी गद्दार की साजिश है ! रानी ऐसा नहीं कर सकती······कुअर ऐसा नहीं कर सकता······

इसी समय सैनिक पुरोहित गरीबदास को मुश्कि बांधे ले आए और राणा के सम्मुख खड़ा कर दिया। पीपल के पत्ते की तरह उसका शरीर कांप रहा था। पास खड़े सैनिक यमदूत और महाराणा साक्षात् यमराज के रूप में उसे दिखाई दे रहे थे। वह अपना अपराध जानने को अधीर ही था कि राणा बोले, 'अरे

कृतघ्न ! तूने मेरा नमक खाकर मेरी ही पीठ में छुरी भोंकने की कोशिश की ! तुझे राज्य में प्रतिष्ठित आसन तथा महल में हर तरफ आने-जाने की छूट दी, तो तूने यह गुल खिलाया। बता नीच ! ऐसा जघन्य कृत्य तूने क्यों किया ? किसने बढ़ावा दिया था तुझे ?'

'दया······दया करें पृथ्वीनाथ ! मैंने कुछ नहीं किया। मुझे कुछ मालूम नहीं···'

राणा ने वह पानड़ी उसके हाथ में दे दी। पुरोहित ने देखा, 'आज रात को मैं राणाजी को पौढा दूंगी। आप सवेरे जल्दी ही सरदार सिंह को गद्दी पर बिठाने और ढोल की तैयारी करने आ जाना।

'पुरोहितजी के पांवों तले की भूमि खिसक गई। मुख पीला पड़ गया, वह बड़ी कठिनाई से बोला, 'मैं निर्दोष हूं प्रभु ! मैं इस पानड़ी के बारे में कुछ नहीं जानता। मैं भगवान एकलिंग नाथ की शपथ खाकर कहता हूं, मुझे कुछ ज्ञात नहीं।'

तब राणा ने वह कटार दिखाई। पुरोहित गरीबदास तुरन्त पहचान गया, 'यह कटार छोटी रानीजी के यहां से चण्डालदास को जो शरोपाव आया उसमें थी और मैंने कामदार दयाल को समुराल जाते समय सुरक्षार्थ दी थी। इससे अधिक मैं इस सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता अन्नदाता !'

'ड्योढीदार···! पुरोहित चण्डालदास को हाजिर किया जाय। कुंअरपदों के महलों पर पहरा बिठा दिया जाय।'

भीत तथा चकित कुंअरानियों को रङ्ग महल में छोड़कर गुप्त मार्ग द्वारा चम्पा के साथ कुंअर सरदार सिंह अपनी मां के कक्ष में आ गया। रानी बिलख पड़ी, गिड़गिड़ा उठी, 'बेटा ! मेरा जीवन संकट में है। अन्नदाता मुझे मार डालेंगे। मेरी रक्षा कर मेरे लाल ! तेरे ही कारण मैंने यह संकट मोल लिया है। तुझे मेवाड़पति बनाने के लिए ही मुझे आज मरना पड़ रहा है। मेरे पूत ! मुझे बचा ले···अपनी मां को बचा ले···'

'क्या कहती हो मां ? कैसा संकट ? मुझे मेवाड़पति बनाने के लिए तुमने संकट लिया ? यह सब क्या है मां ? मैं कुछ नहीं समझ पा रहा।'

'तू कभी नहीं समझ पाया बेटे ! मैंने तुझे राणा बनाने के लिए क्या-क्या नहीं किया ? तू राजकुमार होकर भी साधु-का-साधु रहा लाल ! इसलिए आज मैं

अपने ही हाथों अन्नदाता को·····'

'अन्नदाता को···? अन्नदाता को क्या मां ? तुमने पिताजी को क्या कहा मां ?'

'मैंने उन्हें विष देने की इच्छा की थी बेटे ! मैं उन्हें मार डालना चाहती थी, ताकि कल सुबह मेवाड का मालिक मेरा बेटा बने। मैंने इसीलिए बडे कुअर को भी मरवा डाला; लेकिन आज मुझे मरना है···आज मुझे मरना है। बेटे ! अगर तुममें थोड़ी-सी भी मातृभक्ति हो, तो उठा तलवार और···'

'बस मां ! आगे मत बोलना।' कुअर सब समझ गया। इस कल्पनातीत दृश्य से मतिभ्रम-सा, बावला-सा वह आग्नेय नेत्रों से अपनी मां को घूरने लगा। मानो नये सिरे से अपनी जन्मदात्रि का निरीक्षण कर रहा हो। मानो उसके जीवन का उसकी कोख से उत्पन्न होना संदिग्ध हो गया हो। चीख पडा वह, 'तुमने अन्नदाता को विष देने का विचार किया ? महाप्रतापी राणा राजसिंह की हत्या करने की चेष्टा की ? तुमने मां···?'

इसी समय पुरोहित चण्डालदास के रक्त से सना हुआ गुर्ज लेकर राणा रानी के रंगमहल के द्वार पर आए। वहां सरदार सिंह को खड़ा देखकर उनके तन-बदन में विद्युत धार दौड़ गयी। उनका रोम-रोम अग्नि उगलने लगा, किन्तु मां-बेटे की बात सुनने के अभिप्राय से तनिक ठिठक गये। कुअर कह रहा था, 'एक तो कैकयी ने सूर्यवंशियों के कुल को कलंकित किया था मां। एक आज तूने किया है। तू कैकयी से भी बढ़ गयी मा। मुझे गद्दी दिलाने के लिए तू अपने सुहाग को, मेवाड के विधाता को, हिन्दुत्व के रक्षक को विष देने के लिए तैयार हो गई ? आनेवाला इतिहास क्या कहेगा मां ? जिस मेवाड़ में पद्मिनी और करुणावती जैसी वीर पत्नियां हुईं, वहीं तेरे जैसी कैकयी भी इस कुल को कलंकित करने आई थी। तुझे लाख-लाख धिक्कार है, तेरी कोख में पली मेरी इस नर देह को धिक्कार है। तुझे सैंकडों जन्मो तक पुत्र लाभ न हो मां···तुझे सैंकड़ों जन्म तक पुत्र लाभ न हो···' यह कहते-कहते कुअर की आंखो से आंसुओ की झड़ी बरस पड़ी, वह तीर की तरह जिस रास्ते से आया था, उसी से वापस लौट गया। रानी भीत सिंहनी-सी इधर-उधर झाप मारने ही को थी कि साक्षात् यमराज के रूप में रक्तसनी गुर्ज हाथ में लिए उसे अपने स्वामी दिखाई दिये।

'···नहीं···नहीं मेरे मालिक ! मेरा अपराध क्षमा हो···मेरा अप···'राध' शब्द कहने से पूर्व ही महाराणा ने अपने गुर्ज से उसके मस्तक पर भीषण प्रहार किया जिससे तत्क्षण ही उसका मस्तक फट गया और वह कटे पेड़-सी भूमि पर

गिर पड़ी।

अब राणा का ध्यान कुंअर की ओर गया। उन्हें उसके वे शब्द याद आये, 'तुझे लाख धिक्कार है, तेरी कोख में पली मेरी इस नर-देह को धिक्कार है।'

राणा का हृदय धड़क उठा। आशंकाएं प्रबल हो उठीं। वह महल से बाहर आये और घोड़े पर सवार होकर कुंअरपदों के महलों की ओर चल पड़े।

दोनों कुंअरानियां किवाड़ों पर थाप पर थाप दिये जा रही थीं। 'खोलो म्हारा अन्नदाता! कंवाड़ खोलो···आपरा पगल्यां देखां ओ म्हारा रूठ्या, कंवर! सांकल खोल दो।'

लेकिन कुंअर कुछ नहीं सुन रहा था। उसके विचारों में भीषण क्रान्ति उठी हुई थी। किसी भी मनुष्य को संसार इतना घृणित दिखाई नहीं दिया होगा, किसी भी मां जाये को अपनी कुन्दन-सी काया पर ऐसी ग्लानि कभी नहीं आई होगी, किसी को अपना जीवन इतना भार नहीं लगा होगा, जैसा उस समय कुंअर सरदार सिंह को लग रहा था। आन्तरिक संघर्ष के उन कटुतम क्षणों में उसकी भावुकता अपना आत्मपीड़न कह देने पर विवश हो गई। उसने कलम-दवात उठाई और एक पन्ने पर व्यथा को चित्रित कर दिया। फिर उसने एक मंजूषा खोलकर उसमें से एक आकर्षक नीली शीशी निकाली और उसका डांट खोलकर उसमें भरा हुआ सारा तरल पदार्थ पी गया।

अन्तिम बार उसके कानों ने कंवरानियों की सिसकती आवाज में सुना, 'अन्नदाता ड्योढ़ी पधार्या ओ राज! कंवाड़ खोलो। थाने एकलिंग नाथ री आण ओ म्हारा सुरगरा साथी। अब तो कंवाड़ खोल दो।'

और इसके साथ ही दोनों कुंवरानियों ने द्वार पर सिर धुनना आरम्भ कर दिया।

राणा बड़े पशोपेश में पड़ गये। तुरन्त उन्होंने सेवकों को किवाड़ तोड़ देने की आज्ञा दी। दो चार सेवक भिड़ गये। क्षण भर में किवाड़ तोड़ डाले गये।

भीतर जाकर राणा ने जो दृश्य देखा, तो उनकी आँखें फटी-की-फटी रह गयीं··· कुंअर सरदार सिंह अपने पलंग पर चिर निद्रा में सोया था; उसके पास ही वह शीशी और पर्चा उसके जीवन की कहानी का प्रतीक बन कर पड़ा रह गया था। विक्षिप्त राणा ने कांपते हाथों से वह पर्चा उठाकर पढ़ा—

पाणी पिंड तणाह, पिंड जातां पाणी रहे
चितार सी घणाह, सपना ज्युं सरदारसी।

दोनों कुंवरानियां चीख मारकर मृत कुंअर पर जा गिरीं। राणा को लगा जैसे उनके प्राण छूट जायं, तो वे इस असह्य वेदना से मुक्ति पा लें। वह चीख पड़े, फूट पड़े, 'बेटा सरदार। मेरे लाल…मेरी बाट भी नहीं देखी। ऐसी भी क्या जल्दी थी? मैंने कौन-सा अपराध किया था? ऐसी सजा क्यों दी मुझे? कुंअर! मेरे अलबेले कुंअर…अब उदयपुर के लोग अभिमान किस पर करेंगे? अब अनोखे कुंअर के लोग कहाँ दर्शन करेंगे? मेरे भोले राजकुमार! मेरा अपराध तो क्षमा कर जाता…अपना पानी रखने के लिए मेरा पानी क्यों उतार गया मेरे लाल…!'

उपस्थित प्रतिष्ठित सेवकों ने महाराणा को वहाँ से सादर उठाया। डावड़ियां बेसुध कुंअरानियों को भीतर ले गयीं।

जिसका शासन मेवाड़ के इतिहास में स्वर्णकाल माना जाता है, जिसने अपने भुज-बल से अनेक सूबों को अधीन कर क्रूर और कट्टर औरंगजेब को भी नाकों चने चबा दिये, जिसका आश्रय पाने को स्वयं भगवान व्रजमण्डल छोड़कर मेवाड़ पधार गये थे, वही इतिहास प्रसिद्ध महाप्रतापी राणा राजसिंह एक भील के घर की पुरानी केलड़ी (मिट्टी का तवा) अपने पास लिए भग्न हृदय, निराश, आत्म-ग्लानि से मृत हुआ-सा अपने निजी बैठक-कक्ष के गोखड़े में बैठा हुआ अपने दुर्भाग्य की भयानक इति देख रहा था। नीचे चौक में सारा उदयपुर नगर आ जुटा था। हर आदमी फफक रहा था, हर स्त्री चीख रही थी, हर नौजवान हिचकियां ले रहा था। आकाश पर प्रातः ही से घनघोर कुहरा छाया था। लग रहा था, मानो सूर्यवंश के इस दीपक के बुझ जाने से भगवान् भास्कर भी पीडावश निस्तेज हो गये हों।

चारों ओर सरदार-उमराव आवश्यक व्यवस्था हेतु दौड़ रहे थे। महलों में खाती लोग डोल तैयार कर रहे थे। रनिवास में कुंअरानियां सोलह शृंगार कर रही थीं, मेंहदी और महावर रचा रही थीं।

अपरान्ह तक सवारी तैयार हो गयी। आगे ही आगे सोलह शृंगार किये तेजोमय मुखमण्डल पर सघन केश राशि बिखराये, हाथों में नग्न खड्ग लिए साक्षात् जगदम्बिका-सी दोनों सतियां श्वेत अश्वों पर आरूढ़ थीं, पीछे उस भुवन मोहन राजकुमार का डोल था जिसमें राजसी वस्त्रों से अलंकृत उसकी अनुपम देह

अभी बोल देगी, ऐसी लग रही थी। सैकड़ों लोग जिसका मुख देखे बिना भोजन नहीं करते थे, जिसके मार्ग से गुजर जाने पर स्त्रियां झरोखों से अपनी श्रद्धा लुटाया करती थी, जिसे स्वर्गोपम रूप-बल-गुण तथा ऐश्वर्य प्राप्त था, जिसे अपना स्वामी बनाकर मेवाड़ की जनता स्वयं कृतकृत्य होने को अधीर थी, वही अनोखा कुंअर आज अन्तिम यात्रा को प्रस्थान कर रहा था। तृणवत् सारे वैभव को लात मारकर आत्महत्या के द्वारा स्वर्ग जाने का नया उदाहरण प्रस्तुत कर सदा सर्वदा के लिए जा रहा था।

ढोल धमाके बज उठे। तोपें छूटने की भीषण आवाज जनता के हृदय को खण्ड-खण्ड करने लगी। आखिर रवानगी से पूर्व का नगाडा बजा तो अपने कक्ष में बैठे हुए महाराणा ने दीवार से सर टकरा दिया। दयाल वहीं खडा था, उसने बडी कठिनाई से उन्हें संभाला, इसी समय डावड़ी ने आकर फफकते-फफकते निवेदन किया।

'कुंअरानियां फरमाती हैं अन्नदाता !···हम आपके पुत्र के साथ···सती होने जा रही हैं। आशीर्वाद बक्षाया जाय।'

'नहीं''''। मैं उन देवियों को मुंह दिखाने लायक नहीं। कहां है मेरा मुंह सो दिखाऊ ? मेरा मुंह तो तुम अपने साथ लिये जा रही हो मेरी लक्ष्मियों···!'

ऐसा कहकर पास पड़ी केलड़ी के नीचे की कालिख महाराणा ने अपने मुख पर पोत ली और झरोखे से बाहर झांका।

'म्हाणो मुजरो मालूम वे अन्नदाता ! म्हें आपरे कुंअर साथे सुरगां जावां। सीख बक्षाओ मालकां !' दोनों कुंअरानियां क्षण भर के लिए मस्तक उठाकर एक साथ उपर्युक्त शब्द बोली और एक साथ ही उन्होंने घोड़े को हल्की-सी एड़ दे दी। वह मृत्यु का जलूस अवर्णनीय वेदना से चरमराकर चल पड़ा।

लाज के मारे राणा ने अपना मुंह वापस खींच लिया और तड़पकर वहीं गिर पड़े।



एक साची घटना

मारवाड़ी मिनख नई , देवता

श्रीलाल नथमल जोशी

◘

संस्मरण कैवणो ठीक कोनी, कारण बात घणा बरसां री है, म्हारै बालपणै री, जद कै म्हारै में समझणी बुद्धि नई आई ही , पण फेर भी उण घटना री आडी-अंवली लीकोल्यां म्हारै याद-पट माथै ओजू मड्योड़ी है । वे आज नई जावक मिटी कोनी कारण आ बात मोकली बार माजी रै मूंढै मनै सुणन सारू मिलती रैई है ।

चमालीस बरसा पैली री बात है । म्हारा पिताजी दक्षिण रै तेनाली गांव में, बीकानेर रै सेठां री दुकान में रोकड़िया हा । मारवाड़यां सारू उण बखत भी माड़ी भावना जागण लागगी ही, इण कारण जद म्हे एक मकान में भाडै रैवण लाग्या, तो दूजोड़ो साझीदार भाड़ेती घबरायग्यो, भई अै मारवाड़ी है जिको मनै लूंट लेसी । पिताजी तेलुगू भासा जाणन लागग्या हा, अर बां उण तेलुगू परवार

नै समझावण री कोसीस करी के म्हांरै कारण उणांनै केई तरै री तकलीफ नईं हुवैली। पण तेलुगू परवार रै माथै में घिरणा री जिकी भावना ही, वा किणी तरै कम नईं पड़ी।

एक दिन इसो संजोग वण्यो कै रात री वेला माजी पिसाब-घर कानी गया। घर रै मांय, आमतौर सूं हुया करै ज्यूं, एक कूवो हो। उण कूवै री पाल माथै चमचमाट करती कोई जिनस दीखी। माजी नैड़ा गया, तो सोनै रो हार! मांय आयनै पिताजी नै देखाल्यो, अर कैयो कै दिन ऊग्यां सूं मालधणी नै हार सूंप देसां। पण पिताजी रै इत्ती भी खटावण हुई कोनी। वां कैयो जे आं लोगां नै अबार रात नै उण हार रो ध्यान आय जावै, अर जोवणो सरू कर्‌यां पछै आपां हार बतावां, उण में आपांरो सऊकारो इत्तो कोनी जित्तो कै अबार वांनै जगाणनै आपां चलायर सामै पगां हार देवां।

पिताजी वांरो घर मांयलो बारणो खड़कायो। पण नींद रै खर्राटां में बोलतो कुण हो? फेर जद जोर सू बारणो खड़कायो, तो सगला अचाणचक जाग्या अर सोच्यो, आज मारवाड़ी म्हांनै लूटसी; अर जोर सूं हाको कर दियो, चोर रे, चोर रे, आवो रे, आवोरे। अर उणी वगत घर रा दो-तीन जणा बारणो खोल-खोलनै गली में भागग्या अर रोलो चालू राख्यो। फेर आदम कम क्यू भेलो हुवतो? भाड़ेती आपरै कालजै रो डर सगलां नै बतायो, अर मिनखां रो हेड़-रो-हेड़, बिचलो बारणो खोलनै मांय आयग्यो।

इसो अण चींत्यो हजूम असमै देखर पिताजी घबराग्या, अर डरसूं कांपण लाग्या। वै काईं कैवणो चावता, पण भीड़ में वांरी अवाज रो कठै पतो लागतो। लोग वांनै मचकावण लागग्या, धक्का भी लगाया अर शायद मार-पीट भी हुवण आली ही। पण वा टलगी। एक जणो दुकान में आवण कारण पिताजी रै सैंधो हो, अर डील में लूठो हो अर बोली भी उणरी जाडी ही। वी भीड़ रै उत्साही लोगां नै खांधा झाल-झालनै अलगा कर्‌या, अर कैयो, सामलै आदमी री बात भी सुणसो या खाली सगला आप-आपरी खीचड़ी रांधसो? उणरी बात रो असर हुयो, अर सगला चुप रैयग्या।

थोड़ी ताल में जद पिताजी में बोलण री सगती बापरी, तो वा तेलुगू में कैयो, म्हे तो घर में दो मिनख-लुगाई हां अर एक छोटो टाबर है। म्हांरै कनै कोई अस्तर-सस्तर भी कोनी। साथी भाड़ेती घर-घर रा च्यार-पांच मिनख है, तीन-च्यार लुगायां, बड़ा-बड़ा टाबर भी है। थे आ सोचो कै इत्तै जणां रै हुवतै थकां म्हे आंनै लूंट सकां?

भीड़ मांय सू एक जणो बोल्यो, मारवाड़ी चोर है ।

पिताजी कैयो चोर तो कोई काम चुपचाप करै, खडको-भड़को बिलकुल नईं करै, अर म्हैं तो बारणो खड़कायनै खुद साथी भाड़ेती नै जगाण्यो है । थे आ सोचो हो कै सगलां नै जगाणनै म्है दो जणा आं सगलां रो माल-असबाब लूंटनै रातो-रात कठै ई फरार हुय जासां । थे सगला सऊकार हो, तो दूजै लोगां सऊकारै रो अजूणो कर्‌योडो है ?

सगली भीड़ में सरणाटो छायग्यो । जिका घणबोला हा, वारी भी जीभां रै जाणै लकवो मारग्यो । सगला अेक-दूजै रै मूढां खानी ताका-तोला करण लागग्या ।

फेर उण लूंठै आदमी पूछ्‌यो, तो रोकडियाजी, आप बारणो क्यूं खडकायो ?

पिताजी कैयो, आ बात जे साथी-भाड़ेती उणी वगत पूछ लेवता, तो राई रो परबत ई नईं हुवतो ।

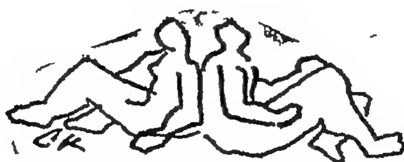
वो आदमी बोल्यो, खैर, आप अबै बतावो ।

पिताजी भाड़ेती री लुगाया खानी इसारो करतां पूछ्‌यो, थांरो सोनै रो हार तो गम्यो कोनी ? इत्तै में एक जणी आपरो गलो सभाल्यो अर रोवण लागगी, अरे हूं तो मरगी, म्हारो तो हार गमग्यो ।

पिताजी जद हार री बात बताई कै किण तरै हार पड्‌यो लाध्यो, अर उणनै देवण सारू वां बारणो खडकायो, तो सगली भीड़ कैवण लागगी, मारवाडी बोत आछो आदमी है, मारवाड़ी बोत आछो आदमी है ।

उण लूंठै आदमी फेर साथी भाडेत्यां री जबरी मिट्टी पलीत करी । वांनै कोभी तरै गाल्या काढनै धक्का दिया । तमासा देखणिया खिसकणा सरू हुयग्या ।

इण घटना पछै जिका साथी-भाड़ेती सरूपोत में सक अर सूग कर्‌या करता वां आडा पड़नै माडाणी बोलणो सरू कर दियो । एक दिन आयनै पिताजी सूं माफी मांगी, म्हे तो समझता हा कै मारवाड़ी म्हांनै लूटै । इण तरै अेकलपै में हाथ आयोडो हार तो कोई तेलुगू भाई भी पाछो बगसतो कोनी । अबै हू समझूं कै मारवाड़ी मिनख नईं, देवता हुवै ।



एक और मौत

कमर मेवाड़ी



वह कुर्सी पर बैठा-बैठा अचानक उछल पड़ा। उसे लगा जैसे किसी ने उसके एक जोरदार थप्पड़ मारा हो। गाल दर्दाने लगा था। उसने चोट खाये स्थान पर हल्के से अपना हाथ फिराया। उसे गाल थोड़ा उभरा हुआ महसूस हुआ।

थप्पड़ के झटके से आंखों में आंसू की बून्दें छलक आई थी। उसने उंगली फिराकर उन्हें शून्य में छितरा दिया। वह सम्भला। अब उसने अपने इर्द-गिर्द के परिवेश को कनखियों से ताका। पर वहां कोई नहीं था, वह आश्वस्त होकर फिर से कुर्सी पर बैठ गया।

काफी देर बैठे रहने के बाद उसे उकताहट-सी महसूस हुई। वह उठा। सामने की आलमारी से एक विल्स का पैकेट निकाला, उसमें से एक सिगरेट निकालकर सुलगाई और खिड़की के पास जाकर खड़ा हो गया।

खिडकी में खडा-खडा वह सिगरेट के हल्के-हल्के कश लेता रहा। नीचे तारकोल की एक लम्बी सड़क बहुत दूर तक चली गई थी। लोग आ-जा रहे थे।

सड़क पर खड़े लेम्पपोस्ट के सहारे एक लडकी खडी थी। सौन्दर्य की प्रतिमा। उसे लगा जैसे वह किसी की प्रतीक्षा में है। शायद कोई मित्र हो, पति भी हो सकता है। पति की बात का विचार मन में उठते ही उसे तुरन्त आभास हुआ कि उसका मुह कडवा गया है। उसे मतली सी होने लगी, पर उसने तत्काल बहुत सारा थूक एक साथ खिडकी के नीचे उगल दिया।

लडकी ने वहीं खड़े-खड़े अपने पर्स में से शृंगार सामग्री निकाली और अपने आपको ठीक करने में व्यस्त हो गई, लडकी को ऐसा करते देख उसे किसी कोठे वाली की याद आ गई और उसने घृणा से अपनी नजर लडकी पर से हटा ली।

वह अकारण ही कमरे में चहलकदमी करने लगा। दो-तीन राउण्ड लगाने के बाद वह फिर खिड़की पर आकर खड़ा हो गया। लड़की अभी तक वही खड़ी थी। उसने खत्म हो रही सिगरेट को फेंककर दूसरी सिगरेट सुलगा ली। इस बार वह हवा में धुए के छल्ले बनाने लगा।

अचानक उसे ऐसा लगा कि वह लेम्पपोस्टवाली लडकी उसी को ताक रही है। उसे उपन्यासों में पढी बातों और फिल्मो में देखे दृश्यो की वास्तविकता में कुछ-कुछ सच्चाई लगने लगी। उसने झट से सिगरेट का एक तेज कश खींचा और कई छल्ले उस लडकी की ओर उछाल दिये। उनमें से एक छल्ला लडकी की नाक से जा टकराया और बिखर गया। लडकी हल्के से मुस्कराई। उसे लगा जैसे उसके पास का लेम्पपोस्ट भी जोर से खिलखिलाकर हंस पड़ा हो। लड़की की मुस्कराहट से उसके शरीर में एक मीठी-सी गुदगुदी उत्पन्न हो गई।

उसको ऐसा लगा मानों वह लडकी उसे बुला रही है। उसने अपनी निगाहें लडकी पर ही टिका दी। उसका एक हाथ आमत्रंण की तरह उठ-गिर रहा था और वह हस रही थी।

उसे अब पक्का विश्वास हो चला था कि लडकी वास्तव में उसे ही इशारा कर रही है, उसे अब उसके पास पहुँच जाना चाहिये। वह अब नीचे जाने के लिए अपने को तैयार कर चुका था कि उसके कानों से एक तेज चीख टकरायी, उसने पलटकर देखा तो वह लड़की एक टैक्सी के नीचे दबी पड़ी थी। उसका सांस कुछ क्षण के लिए जहां का तहां ठहर गया। आखें फटी की फटी रह गई। वह दौड़ा-दौड़ा नीचे सड़क पर जा पहुचा। लाश के पास अब तक

काफी भीड़ जमा हो चुकी थी। बाढ़ के पानी की तरह। लड़की मर चुकी थी और टैक्सी का ड्राइवर कहीं भाग गया था।

देखते ही देखते पुलिस की गाडी आ खडी हुई। एक मोटे ताजे पुलिस इन्सपेक्टर ने गाड़ी से उतरते ही भीड़ की ओर एक मोटी सी गन्दी गाली उछाल दी। इसका यह असर हुआ कि कुछ लोग तितर-बितर हो गये और इन लोगों के लिए घेरे में प्रवेश करने का रास्ता खुल गया। पुलिस तफ्तीश में जुट गयी। लड़की पर टैक्सी का एक व्हील पूरा फिर गया था। लड़की के वस्त्र और उसका पूरा शरीर रक्त में सना हुआ था। काफी रक्त तारकोल की काली सड़क पर फैल गया था।

लड़की के हाथ में जो पर्स था उसमें से एक पैन और एक कागज का पुर्जा निकला और कुछ नहीं। उस पुर्जे पर लिखा था, 'मैं तीन दिन से भूखी हूं। जो देश अपनी सन्तानों का पेट भरने में असमर्थ हो वहां मौत के अतिरिक्त और कोई दूसरा रास्ता नहीं हैं।' उसे इस बात का गहरा अफसोस हुआ कि उसने जो अन्दाजा लगाया था वह गलत निकला।

उसे लगा, मानो इस लड़की ने पूंजीपतियों और स्वार्थी राजनेताओं के मुंह पर सरे आम थूक दिया हो। उसे महसूस हुआ टैक्सी लड़की पर नहीं पूरे देश पर फिर गई है और सारा देश रक्त के समुद्र में तैर रहा है और देश के आकाश पर चीलें, कव्वे और गिद्ध उसे नोच खाने के लिये मडरा रहे है।

अचानक उसे लगा वह कमजोर हो गया है। खड़े रहने की शक्ति भी जाती रही है। उसके पेट की अंतड़ियां आपस में टकराने लगी। उसे भूख का अहसास हुआ। वह वापस अपने मकान पर चला आया।

वह खाने के विषय में सोच ही रहा था कि अजाने ही उसका एक हाथ अपने गाल पर चला गया। गाल उभरा हुआ था। उसने यह जानने के लिए शीशे में देखा कि गाल क्यों उभरा हुआ है। शीशे में देखते ही उसे गाल के उभरे होने का कारण ज्ञात हो गया। उसे वह थप्पड़वाली बात याद आ गई। वास्तव में एक ओर का गाल काफी लाल और उभरा हुआ था। उसने खाना खाने का विचार तत्काल अपने मन से निकाल दिया और धम्म से कुर्सी पर बैठ गया। उसे लगा वह कुर्सी से चिपक गया है और अब कभी भी उससे अलग नहीं हो सकेगा।

■

तलाश

प्रकाश कुलश्रेष्ठ

■

गर्मी से अपनी रक्षा करने का पूरा-पूरा इन्तजाम कर लिया गया था। जिधर से भी गरम लू के थपेडों के भीतर घुस आने का अन्देशा था, वहां खस की टट्टियां लगा दी गई थीं; उन्हें लगातार नम बनाए रखने के लिए पानी के पाईप फिटकर दिए गए थे। और, कमरों के भीतर बिजली के पंखे चल रहे थे, फर-फर-फर। मैंने देखा, चिडियों का एक जोड़ा मेरे कमरे के पखे के ठीक ऊपर के बोल्ट-कवर में अपना घोंसला बनाने का प्रयत्न कर रहा है। मेज पर घोसले की सीकें गिर रही थीं और वह गन्दी हो रही थी। सरासर हिमाकत है, मैंने सोचा और चपरासी से कहकर घोंसला बाहर फिकवा दिया। दिल को तसल्ली दी : अगर कहीं पंखे से टक्कर लग गई तो ख्वामख्वाह अपने गले हत्या लगेगी।

दूसरे दिन कमरे में घुसते ही मेरा ध्यान पखें की ओर गया। मैंने देखा, वे दोनों फिर से अपना घोंसला बनाने में जुटे हैं। 'रॉ मैटीरियल' उन्हें बाहर से लाना पड़ रहा था और चूंकि दरवाजे बन्द थे, उन्होंने एक काम-चलाऊ द्वार बना लिया था, खस की टट्टी में एक बड़ा सा छेद करके।

यह घोंसला फिर से तोड़ देने और चिडियों को मार भगाने के लिए मैंने चपरासी को आवाज़ लगाई। मगर जब तक वह आये, एक अरसा पहले सुनी एक कहानी

के शब्द मेरे कानों में गूंज उठे, 'किसी का बना-बनाया घोंसला नहीं तोड़ना चाहिये।' कहानी सुनानेवाला एक खूबसूरत चेहरा मेरी आंखों के सामने घूम गया। उस चेहरे से सम्बन्धित तमाम बातें मेरे दिमाग में उथल-पुथल मचाने लगीं। एक मिनट में मैं वह सारी जिन्दगी जी गया जिसे उस चेहरे के साथ कई महीनों तक जीता रहा था। और जब, चपरासी 'हुक्म ?' कहकर सामने आया, मैंने 'कुछ नहीं।' कहकर उसे वापस कर दिया।

तो, मेरी मेज पर और कमरे में गन्दगी बढ़ती रही, खस की टट्टी में बना दरवाजा अधिकाधिक चौड़ा होता रहा और घोसला अपनी जगह पर बदस्तूर बनता रहा। चिड़ियों का जोड़ा बड़ी लगन और परिश्रम से अपने काम में जुटा था। चिड़ा अपनी चोंच में पकड़कर कोई तिनका लाता। अपने स्वनिर्मित दरवाजे में बैठकर एक हांक लगाता, मानों कह रहा हो—लो, एक तिनका मैं और ले आया। घोसले में बैठी, अपने काम में व्यस्त चिडिया खुशी से चहचहाने लगती। कहती, 'ऐसी भी क्या जल्दी है ? दो-चार दिन बाद घोसला बन जाए तो क्या फर्क पड़ता है ? जरा देर मेरे पास बैठकर कभी-कभी सुस्ता भी लिया करो।' चिड़ा मुस्करा देता। दीवार के सहारे-सहारे ऊपर की ओर एक उड़ान भरता। फिर, छत से एकदम सटकर उड़ते हुए सीधा घोसले में जाता। थोड़ी देर घोसले के सम्बन्ध में दोनों कोई सलाह-मशविरा करते और चिड़ा फिर सामान लेने बाहर चला जाता।

खस की टट्टी पर एक-एक बूंद पानी गिरते हुए देखना मुझे अच्छा लगता है। पाईप से पानी गिरेगा, खस के किसी तिनके के निचले छोर पर एक बूंद आकर ठहर जायगी, थोड़ी देर ठहरी रहेगी, फिर नीचे गिरकर कोई दूसरा छोर पकड़ लेगी। कभी-कभी मैं सारी बूंदों को एक साथ देखने लगता हूं और तब मेरे सामने उन तमाम लोगों की शक्लें आकर खड़ी हो जाती है जिन्हें गर्मी की तलाश में अपना घर बार छोड़कर चल देना पड़ता है।

पंखा चल रहा है, फर-फर-फर।

मैं सोचने लगता हूं, जहा इतने सारे लोग पानी के लिए तरस रहे हैं वहां अपने कमरे को ठण्डा बनाए रखने के लिए इतना पानी बहाकर क्या मैं अपराध नहीं...

खट् !

मैं पंखे की ओर देखता हू। वह चलता रहता है, फर-फर-फर।

मेरे दिल की धड़कन यकायक बन्द हो जाती है। मैं कुर्सी से एकदम उछलकर खड़ा हो जाता हू और कमरे में इधर-उधर देखने लगता हू। जिसकी आशंका

थी, वही हो गया ; चिड़ा पखे से टकरा गया था । मैंने उसे देखा । हिलाया-डुलाया । वह दम तोड़ चुका था ।

मैंने घोंसले की ओर देखा। चिड़िया वहां नही थी। मैं सोचने लगा, अभी चिड़िया वापस आयगी । जिन्दगी भर के अपने साथी को दम तोड़ते देखकर उसकी आंखों के सामने अंधेरा छा जायगा । वह पछाड़ खाकर गिर पड़ेगी । मैंने सोचा, कितनी हसरतें रही होंगी इसके दिल में जब दोनो—यह चिड़िया और वह चिड़ा—मिलकर अपना घोंसला बना रहे थे । और वह ? जो अपना खून-पसीना एक करके बड़ी मेहनत से यह घोंसला बना रहा था, उसके चले जाने पर, यह चिड़िया अकेली कैसे रह पायगी घोंसले में ? क्या घोंसला इसे काटने नहीं दौड़ेगा ?

मैं चिड़िया की प्रतीक्षा करने लगा । एक पत्नी को उसके पति की अचानक हुई मौत की खबर देने के लिए मैंने अपना दिल कड़ा कर लिया ।

चिड़िया लौटी । उसने चिड़े को आवाज लगाई । कोई जवाब नही आया । उसने घोंसले में बैठकर अपने चारो ओर एक सरसरी निगाह दौड़ाई । और, मैंने देखा उसकी आंखें उस स्थान पर केन्द्रित हो गई हैं जहां चिड़ा मरा पड़ा था ।

वह निर्लिप्त-सी होकर उधर देखती रही । उसकी आंखों के सामने अन्धेरा नहीं छाया । उसे गश नहीं आया । वह मरे हुए चिड़े के पास तक भी नहीं गई । इसके विपरीत, वह बड़ी जोर से चहचहाई और बाहर उड़ गई ।

थोड़ी देर बाद ही वह फिर लौटी; अकेली नहीं, एक दूसरे चिड़े को अपने साथ लेकर । मैं बड़ी उत्सुकता से उन दोनों की ओर देखने लगा । मरे हुए चिड़े के पास ही खड़ी एक अलमारी पर वे बैठे थे । चिड़ा अपनी चोंच से चिड़िया को गुदगुदा रहा था और वह चीं-चीं करती इधर-उधर फुदकती फिर रही थी । क्या कुछ हो रहा है, मैं समझ नहीं सका । कभी मरे हुए चिड़े की ओर देखता और कभी इन दोनों की ओर । यकायक ही किसी बात का आभास पाकर जब मैंने अलमारी की ओर देखा तो आंखों पर विश्वास नहीं हुआ । मैंने सिर नीचे झुका लिया ।

'अपनी मुहब्बत की सच्चाई की जाने कितनी कसमें इस चिड़िया ने नहीं खाई होंगी', मैं सोचने लगा, 'मगर चिड़े के आंखें मूंदने के बाद यह थोड़ी देर के लिए भी सब्र नहीं कर सकी ।'

बेशर्मी की हद हो गई थी और चिड़िया जैसी मामूली चीज से एक इंसान नफरत करे, यह समझ में आने जैसी बात नहीं है, पर मैं इस चिड़िया से नफरत करने लगा था ।

उस बदनसीब चिड़े की वह बदनसीब लाश मैंने बाहर फिंकवा दी जिसके पास बैठकर कोई हिचकियां भरकर रोया नही, किसी ने दो बूंद आसू नहीं गिराये।

और फिर, सब कुछ पहले की तरह ही चलने लगा। चिड़ा—नया चिडा—बाहर से तिनके बीन-बीनकर लाता और चिडिया उन्हें यथास्थान रखकर घोसले बनाती। लगता जैसे कहीं कुछ हुआ ही नहीं।

अब मुझे इन लोगों में कोई दिलचस्पी नहीं रही थी। बल्कि, मेरे कमरे में घोंसले का कोई अस्तित्व है, यह भी मैं भूलने लगा था कि एक दिन फिर से 'खट्' की वही जानी-पहचानी आवाज सुनकर मैंने पखे की ओर देखा, दूसरा चिड़ा भी अलमारी पर मरा पड़ा था।

चिड़िया घोसले में ही थी। वहीं से बैठे-बैठे वह चिड़े की लाश की ओर देख रही थी। दुर्घटना से वह कोई बहुत अधिक परेशान हो उठी हो, उसे देखने से मुझे ऐसा नहीं लगा। थोड़ी देर तक वह लाश के आस-पास मंडराती रही, चिचियाती रही और फिर बाहर उड गई।

लगता है, मेरे कमरे के बाहर चिड़ों की एक लम्बी 'क्यू' लगी है जो इस इन्तजार में है कि भीतर का चिड़ा कब मरे ताकि उनमें से कोई एक जाकर उसका स्थान ग्रहण कर ले।

मैंने देखा, चिड़िया एक और 'घरवाला'—शायद उसी 'क्यू' में से पकड लाई है। आगे क्या होगा, यह मैं पहले से जानता था। इसलिए उधर देखने की मैंने जरूरत नही समझी। मगर वहां होनेवाली घटनाओं को मैं महसूस कर रहा था। मुझे लगा, वहां अधूरा घोसला पूरा करने की ख्वाहिश एक बार फिर से जाहिर की गई, एक बार फिर से मुहब्बत की झूठी-सच्ची कस्में खाई गई और वहां एक बार फिर से वह सब कुछ हुआ जिसे मैं महसूस करता रहा, देख नही सका।

वक्त आने पर यह चिडिया कुछ भी कर गुजरेगी, इसका मुझे विश्वास हो गया था। उसकी जिन्दादिली को मैं कद्र करने लगा था और उसमें दिलचस्पी लेना मैंने फिर से शुरू कर दिया था।

घोसले का निर्माण-कार्य लगभग समाप्ति पर था। अब उसमें 'फिनिशिंग टचेज' दिये जा रहे थे। कभी एक तिनका इधर से उठाकर उधर रख दिया जाता और कभी दूसरा उधर से इधर।

मैं नहीं चाहता था इस कमरे में अब आगे और कोई हत्या हो। किन्तु, जिसके बनने के लिए इतना सब कुछ हुआ था उस घोंसले को तोड़ने का मैं साहस नहीं

कर सकता था। फिर? विकल्प एक ही और था, पंखा बन्द कर दिया जाय। वही करने के लिए मैं स्विच की ओर बढ़ा। चिड़िया ने न जाने क्या सोचा, घोंसले से निकलकर वह एकदम भागी और—और हड़बड़ी में पंखे से टकराकर गिर गई।

यह सब कुछ इतनी जल्दी में हुआ कि मैं कोई निश्चय नहीं कर सका। स्विच की ओर बढ़ते हुए कदम चिड़िया की लाश की ओर चल पड़े। कुछ समय पहले मैं जिससे नफरत कर रहा था उसकी लाश को मैंने एक मूक श्रद्धांजलि अर्पित की। और, उसकी हसरतों के लिए, उसकी तमन्नाओं के लिए एक टीस लिए मैं वापस कुर्सी पर आ बैठा।

घोंसले में बैठा चिड़ा सब कुछ देख रहा था। वह उड़कर लाश के पास पहुंचा। चहचहाया। अपनी चोंच से लाश को हिला-डुलाकर देखा। कहीं कुछ नहीं था। वह वापस घोंसले में पहुंच गया।

और फिर, मैंने वह देखा जिसकी मैं कल्पना नहीं कर सकता था, जिसे बनाने में एक ने नहीं, तीन-तीन ने अपनी जान दे दी थी उस घोंसले को यह चिड़ा तोड़ रहा था। एक-एक तिनका वह अपनी चोंच से पकड़कर खींचता और नीचे पटक देता। मुझे लगा, वह पगला गया है। वह मेरा सारा कमरा गन्दा किये दे रहा था। उसे शायद पता नहीं था कि यह मेरी उदारता ही थी जो उसे अपना पागलपन दिखाने का मौका दे रही थी। अपने कमरे से निकल जाने के लिए मैं उसे मजबूर कर सकता था। मगर मैंने ऐसा नहीं किया क्योंकि मुझे लगता था कि दिल की किसी बहुत ही भीतरी परत में कहीं एक ऐसा स्थान अवश्य है जहां हम दोनों में—इस चिड़े में और मुझ में—कोई अन्तर नहीं है, कि अपने सारे किये-धरे पर पानी फिर जाते देखकर, जैसे मैं बौखला सकता हूं वैसे ही यह चिड़ा बौखला गया है।

और जिस घोंसले को बनाने में तीन दिन लगे थे उसे इस चिड़े ने एक घण्टे में तोड़कर बिखेर दिया। उसका काम खत्म हो गया था। वह उड़ा और अलमारी पर बैठ गया। बैठा रहा। शायद कुछ सोचता रहा।

उसने पंखे की ओर देखा। देखता रहा। टकटकी लगाकर लगातार देखता रहा। और फिर बड़ी जोर से चिचियाता हुआ बाहर उड़ गया।

उड़कर बाहर जाते हुए चिड़े का पीछा करती हुई मेरी दृष्टि फिर से खस की टट्टी की ओर चली गई। मैंने देखा पानी की एक और बूंद खस के एक तिनके के अन्तिम छोर से गिरकर किसी अगले तिनके को पकड़ने का प्रयत्न कर रही है। ■

सलीब पर लटकी जिन्दगी

हमीदुल्ला खां



कहते है वह लडकी पागल थी। सचमुच पागल। अठारह-उन्नीस वर्ष की आयु। किताबी चेहरा। गोरा रंग। सुतवां बदन। कुछ इस तरह की थी वह।

उस शहर में वह कहां से आ गई थी, यह कोई नहीं जानता था। लेकिन रेलवे स्टेशन के पास रहनेवाले लोगो और दुकानदारों ने बताया कि वह 'एकदम' आ गई थी। ज्योंही एक दिन हर रोज की तरह सवेरा हुआ, तो रेलवे स्टेशन के नजदीकवाले बाजार में हीरा पानवाले की थड़ी के नीचे खड़ी वह सिगरेटों के खाली पैकेट, अध-जली सिगरेटों के टुकड़े और तोड के फेंक दिये गये पानों के डांड चुन-चुनकर बीन रही थी।

तब उस वक्त उस लड़की की तरफ किसी ने ज्यादा ध्यान नहीं दिया था। लोग उसे देखते, घूरते, मुंह फेरते आगे बढ़ जाते। लेकिन जब वह हीरा पानवाले

की पान की थड़ी से आगे निकलकर इब्बू साईकलवाले की दूकान के सामने से निकली, तो वह उसे एकटक देखता रह गया। और फिर वह उस जगह के लोगों की आंखों का केन्द्र-बिन्दु बन गई, क्योंकि उसमें हर लड़की बल्कि जवान लड़की की तरह कुछ ऐसा था, जो नजरों का केन्द्र-बिन्दु बन जाता है।

बहुत ही अस्त-व्यस्त फटे-टूटे-से वस्त्र उसके तन पर थे। मैली सफेद ओढ़नी, जो अपना असली रंग और रूप खो चुकी थी। घुटनों तक लम्बी कमीज, जो जगह-जगह से फटी हुई थी जिसमें से उसका उजला तन यहां-वहां से झांक रहा था। ऐसा लगता था मानो किसी बड़ी ऊंची इमारत की कई खुली खिडकियो से अन्धेरे में रोशनी बाहर झांक रही है। शलवार के पायेंचे की दरार और शिगाफ में से झांकती सुडौल गोरी पिंडलियां।

इब्बू साईकलवाले की दूकान से वह सीधी आगे गुजर गई और वह देखता रह गया। वह बिना किसी ओर देखे आगे बढी और एक ढाबे के सामने जाकर खड़ी हो गई। चुपचाप। लेकिन कभी ओंठ फैलाकर हंसती, कभी मुह बिसूर देती। राह चलते लोग उसे बड़ी हसरत और हैरत से देख रहे थे। हसरत से इसलिये कि खुद को सभ्य कहलवाने के जोम में या डर से वह बार-बार एक ऐसी लड़की की तरफ देखना अपनी शान के खिलाफ समझ रहे थे, जो पागल थी, जबकि उसकी सुन्दरता या यौवन का आकर्षण उन्हें उसे बार-बार देखने के लिये प्रेरित कर रहा था। और हैरत की वजह हुस्न का इस तरह खुले में आजादी से फिरना था, क्योकि वह ठीक ऐसे परिन्दे के समान थी जिसे दाना डालकर कोई भी पकड़ सकता है। फिर भी लोग उसे हिकारत की नजर से ज्यादा देख रहे थे, जिसे मात्र दिखावा कहा जा सकता है। ताज्जुब था कि कोई उससे कुछ नहीं कह रहा था। या तो लोग उससे बात करना अपनी तौहीन समझ रहे थे या उससे बात करने की उनमें हिम्मत नही थी।

ढाबे के सामने खड़ी वह पकती रोटियो को बड़ी ललचाई नजरों से देख रही थी। शायद उसे भूख लगी थी और यह सौ फी सदी सच है कि पागल इनसान भी इसे अपनी जरूरत के मुताबिक महसूस करता है।

ढाबे का मालिक एक तरफ टेबुल-कुरसी लगाये शान से बैठा था। मोटी आकृति और सांवले रंग का घाघ आदमी। एक लडका जिसकी मसें अभी नही भीगी थीं, तवे पर रोटिया सेंक रहा था। उसने जैसे ही उसे देखा, तवे पर रोटी जल गई। ढाबे के मालिक ने जलती रोटी की बू मानो पकड़ ली और लड़के को एक मोटी गाली सुनाते हुए कहा, 'देखकर काम नही करता। जली

रोटी को कौन खायेगा ? तेरा बाप खायेगा ?'

तभी ढाबे के मालिक की नजर उस लड़की की तरफ चली गई। उसे अपनी तरफ आकर्षित करने के लिये ही शायद उसने लड़के से कहा, 'यह जली रोटी इसे डाल दे।'

लड़की रोटी पाकर बड़ी खुश हुई। वह वहीं नीचे बैठकर रोटी खाने लगी, तो ढाबे के मालिक ने पूछा, 'कहां रहती हो ?'

यह वाक्य उसने लड़की से बड़ी राजदाराना आवाज में कहा था। लड़की कुछ नहीं बोली। चुपचाप रोटी खाती रही।

'मैंने कहा कुछ बोलोगी भी या खाती ही रहोगी ?' वह फिर बोला।

लड़की रोटी खाने में मशगूल रही। लेकिन उसने अपनी नजरें धरती में गाड़ दीं।

रोटी खत्म हुई, तो वह उठकर जाने लगी। ढाबे का मालिक फिर बोला, 'रोज यहां से एक रोटी ले जाया कर।'

वह अनसुनी करती आगे बढ़ गई।

इब्नू साईकलवाला उसे अभी तक निरन्तर देख रहा था। लड़की ने मुड़ते वक्त इब्नू को अपनी तरफ देखते हुए देखा। वह उसकी दूकान की ओर चल पड़ी।

उसे अपनी तरफ आता हुआ देखकर इब्नू ने आवाज लगाई, 'ऐ पागल! इधर आ। चाय पियेगी ?'

लड़की रुकी नहीं। आगे बढ़ गई···सामने चाय के होटल की तरफ। चाय के होटल के सामने आठ-दस आदमी बेंचों पर बैठे चाय पी रहे थे। दो रिक्शावाले, अपने खाली रिक्शाओं पर बैठे, कांच के ग्लासों में 'सिंगल' पी रहे थे। लडकी रुक गई और चाय पीते हुए लोगों को देखने लगी।

लडकी को होटल के सामने खड़ा हुआ देखकर, इब्नू वहां आ गया। उसने एक 'सिंगल' का आर्डर दिया और चाय आने पर प्याला लड़की की तरफ बढा दिया। उसने इब्नू के हाथ से प्याला ले लिया और वहीं एक मेज के सहारे नीचे जमीन पर बैठकर चाय पीने लगी। इब्नू वहीं खडा रहा। वह गर्म-गर्म चाय जल्दी-जल्दी हलक में उंड़ेले जा रही थी। लोग उसे इस तरह चाय पीते हुए देखकर बेमानी-सी हंसी हसने लगे। इब्नू ने इन लोगों की जिज्ञासा समझते हुए कहा, 'कोई पागल है, बेचारी!'

लड़की चाय खत्म करके उठ खडी हुई और फिर आगे चल दी। उसने इस बीच एक शब्द भी नहीं बोला था। वह लोगों की बातें सुनकर सिर्फ मुसकराती या मुंह बिगाडकर देखने लगती। इस तरह रेलवे स्टेशन के करीब उस छोटे-से बाजार में वह सारे दिन फिरती रही। किसी दिलजले ने उसे जली-कटी सुनाई। किसी मनचले ने उससे कुछ कहकर मन बहलाया। किसी ने गलत नजरों से उसे देखा और कोई उसे देखकर हंस दिया।

शाम हो गई। फिर रात हुई। बाजार की दुकानें एक-एक करके बन्द होने लगीं। सब अपने-अपने घरों को लौटने लगे। मगर वह कहां जाती? उसका कोई वारिस भी उसे लेने नहीं आया था। कौन जाने उसका कोई वारिस भी था या नहीं। या किसी वारिस ने उसे लावारिस के रूप में छोड़ देना उचित समझा था। कुछ भी इसके बारे में निश्चित नहीं कहा जा सकता।

ढाबेवाला सेठ और इन्नू साईकलवाला उस जगह के जाने-माने लोगों में से थे। उन्होंने लड़की से उसके घर का पता मालूम करने की कोशिश की। लेकिन वह कुछ भी नहीं बोली। चुप रही। शायद वह गूंगी थी। तब एक के बाद एक, लोगों के सुझाव आने लगे। किसी ने कहा, इसे पुलिस थाने के हवाले कर दो। किसी ने कोई और सुझाव दिया। उसे अपनाने का सुझाव किसी ने नहीं रखा। न ही उसे कोई शहर के पागलों के अस्पताल ले जाने पर राजी हुआ, किन्तु सुझाव सभी ने दिये। पुलिस थाने भेजने की बात पर सारे ही लोग एकमत-से थे। पर सवाल यह था कि कौन अपने सिर यह जिम्मेदारी ले। पुलिस के जायज और नाजायज सवालों का जवाब देने की हिम्मत शायद किसी में नहीं थी।

आखिर सब अपने-अपने घरों को चल दिये। लड़की को उसकी किस्मत के रहम और करम पर छोड़कर—अकेली। और थोडी देर बाद जैसे-जैसे रात का अन्धियारा बढता गया, चहल-पहल जो कुछ देर पहले वहां थी, खत्म होती गई। सन्नाटा बढता गया। उजाला छंटता गया।

गुलाबी जाडों का मौसम। ओढने के नाम पर सिर्फ एक ओढ़नी उसके तन पर थी। बिछाने को कुछ न था। वह ढाबे की एक बेंच पर आकर लेट गई। सारे दिन की थकी हुई थी, जल्दी ही अचेत सो गई। नींद ही नहीं, प्रकृति की सारी चीजें बिना किसी भेद-भाव के सब के लिये हैं।

अभी उसे नींद आये ज्यादा वक्त नहीं हुआ था कि एक भारी भरकम हाथ बड़ी चुस्ती से उसके शरीर की तरफ बढ़ा और वह जाग गई। हाथ उसकी तरफ बढ़ता गया और उसे अपनी तरफ खींचता गया, खींचता गया, यहां तक कि वह सिमटकर उसकी गोद में चली गई और एक रिक्शे पर डाल दी गई। न वह रोयी न चिल्लाई। उसने कोई विरोध भी नहीं किया। और रिक्शा चल दिया।

एक साल बाद की बात है। सुबह का वक्त है। स्टेशन के सामने लोगों का हुजूम खड़ा हुआ है। वही पागल लड़की अपने नवजात शिशु को, जिसे उसने अभी थोड़ी देर पहले ही जन्म दिया है, अपनी शुष्क छाती से लगाये एक फटी-सी गुदड़ी में लिपटी रो रही है। लोग उसे हैरत से ताक रहे हैं। वह उन्हें फटी-फटी आंखों से देख रही है और रो रही है।

'हरामजादी, बता किसका लाई है ?' इब्बू साईकलवाला कहता है।

'कौन यार का है ? बता, नहीं तो अभी पत्थर से तेरा सर फोड़ते हैं।' ढाबे का मालिक कहता है।

वह सब सुन रही है और रो रही है।

'क्या तुम लोगों के दिल नाम की कोई चीज नहीं है ? इसके लिये तुम्हारे दिलों में कोई हमदर्दी नहीं ?' मजमे में से एक आवाज आती है।

धीरे-धीरे लोगों की भीड़ बढ़ती जाती है। सब ने उसे चारों तरफ से घेर लिया है। उसका चेहरा खौफ और घबराहट के मिले-जुले भावों से वहशतनाक हो गया है। उसने अपनी आंखें धरती में गाड़ ली हैं और हुजूम बोल रहा है। वह खामोश है। इब्बू साईकलवाला और ढाबे का मालिक सबसे ज्यादा बोल रहे हैं, जैसे उन्होंने शराफत और नेकचलनी का ठेका ले लिया है। और किसी की बदचलनी पर नजर रखना सिर्फ उन दो आदमियों का काम है।

'अजी पागल है, छोड़ो जाने दो,' कोई इब्बू को समझाता है। वे दोनों अपनी त्योरियां इसे सुनकर चढ़ा लेते है, 'हम आज इससे यह पूछकर ही रहेंगे कि यह किसका लाई है ? इससे हमारा बाजार बदनाम होगा। अगर किसी ने हमारे पर ही उंगली उठा ली तो—'

'तो क्या होगा ? कौन तुम्हारी बहु-बेटी है, जो बिरादरी में नाक कट जायेगी !'

लड़की चुपचाप बैठी रो रही है। वह सब बातें सुन रही है। मगर उनका मतलब शायद नहीं जानती। 'साली बेशर्म है,' किसी साहब ने कहा है।

लड़की पर इसका पहले ही की तरह कोई असर नहीं होता। वह चालीस-पचास आंखों को एक साथ अपनी तरफ देखते हुए सहमकर बच्चे की पेशानी सहलाने लगती है। हुजूम में से फिर कोई मोटी गाली उसकी तरफ उछाली जाती है। इस मोटी गाली को सुनकर एक रिक्शेवाले को न जाने क्यो ताव आ जाता है, 'ऐ बाबूजी, जबान सम्भालकर बात करना वरना बत्तीसी बाहर निकाल दूंगा। यह बेचारी बेकसूर है। यह सारी बदमाशी इस इब्बू साईकलवाले और ढाबे के सेठ की है। यही बदमाश है, दोनो।'

और मजमे में भगदड मच जाती है। इब्बू अपनी सफाई पेश करता है, 'अबे तो तेरी क्या यह—अभी मैं क्या कहूं?'

रिक्शावाला चुप हो जाता है और हुजूम को चीरता हुआ बाहर निकलकर के किनारे खड़े अपने रिक्शे को चलाता हुआ आगे निकल जाता है।

पागल न जाने इस भीड़ में क्या ढूंढने की कोशिश करती है। वह अपनी वीरान आंखें भीड़ में घुमाती है। एकाएक उसकी आंखों में एक अजीब-सी चमक आ जाती है। जैसे उसने कुछ पा लिया हो। ऐसा, जिसकी उसे तलाश हो। नवजात शिशु को छाती से लगाये हुए वह उठती है और भीड को चीरती हुई सडक के बीचों-बीच आ खडी होती है। उसकी आंखो से आंसू, वहशत और मजलूमियत टपकती है। सडक के बीचों-बीच खडी वह जाते हुए रिक्शे की तरफ देखती है। फिर उसके पीछे तेजी से बेतहाशा दौडने लगती है। और छितरी हुई भीड उसका पीछा करती है, 'पागल है, पागल है।'

वह रिक्शा के पीछे दौड़े जा रही है। तेजी से दौड़े जा रही है। छोटे-मोटे कंकड और पत्थरो के टुकड़े, ढेले, फटे जूतों के सोल, घोड़ो के पांव की नालें और कांच के टुकड़े उसकी पीठ पर बरस रहे हैं और वह दूर जाते हुए रिक्शे का पीछा कर रही है। 'पागल'—ये लोग चिल्ला रहे हैं, 'पागल है! पागल है! पागल है!'



एक और न्यायमूर्ति

रामदेव आचार्य

■

'सर ! मैं आपसे यह पूछना चाहता हूं कि मेरा ट्रांसफर किसलिए किया गया है ?'

'भई, मैंने तो तुम्हारा ट्रांसफर नहीं किया। तुम···(स्थान) से आये हो न ?'

'यस सर !'

'ठहरो, डिप्टी साहब को बुलाता हूं, शायद उन्होंने ही तुम्हारा ट्रांसफर किया है !'

(घंटी का स्वर ! चपरासी का प्रवेश ! आदेश—'डिप्टी साहब को बुलाओ')

'सर ! यह बड़ी विचित्र बात है कि ऐसी सूचना भी आपको नहीं दी जाती !'

'मिस्टर ! तुम्हें मालूम होना चाहिए कि हम डाइरेक्टर है। ऐसे छोटे काम डिप्टी इन्सपेक्टर कर लेते हैं। हम बहुत व्यस्त आदमी हैं।'

'मगर सर ! यदि आप मुझे क्षमा कर सकें…आपको डिप्टी साहब अंधकार में रखते हैं !'

'नानसेंस ! क्या बकते हो ! हमें कोई अंधकार में नहीं रख सकता !'

(आफिस की चिक उठती है ।)

'ये डिप्टी साहब आ गये ! हम अभी फैसला कर देते हैं । डिप्टी साहब…!'

'यस सर !'

'क्या आपने इनका ट्रांसफर किया है ?'

'यस सर !'

'लो मिस्टर…। इन्होंने ही तुम्हारा ट्रांसफर किया है । हम सब बातों का पता लगा सकते हैं । हमें कौन अंधकार में रख सकता है ? (थोड़ी देर बाद) डिप्टी साहब ! ये सज्जन यह जानना चाहते हैं कि आपने इनका ट्रांसफर क्यों किया है । इन्हें बतला दीजिये ।'

'सर ! यह तो आफिस का गोपनीय मामला है । इसे कैसे बताया जा सकता है ?'

'समझे मिस्टर ! यह आफिशल सीक्रेट्स हैं । इसे हम नहीं बता सकते ।'

'सर ! यदि आप क्षमा कर सकें…आपको अंधकार में रखा जा रहा है ।'

'क्या बकते हो…?'

'सर, आफिशल सीक्रेट कहकर सच्चाई को दबाया जाता है । डिप्टी साहब अपने अच्छे-बुरे कामों पर पर्दा डाल रहे हैं । ये किसी काम में आपकी राय तक नहीं लेते । यह अजीब बात है…।'

'मिस्टर, तुम बहुत बढ़-बढ़कर बोल रहे हो…अपने हौसले का ख्याल रखो, सस्पेंड कर दूंगा ।'

'देखिये सर ! सत्य कितना कड़ुवा होता है । जरा डिप्टी साहब के शब्द तो सुनिये । मुझे धमकियां देने लगे । डिप्टी साहब, आप कितने ही नाराज़ हों, मैं सर के सामने सारी बातें खोलूंगा ।'

'डिप्टी साहब । आप नाराज न हों, हम सबकी बात सुनते हैं, यही हमारी खूबी है । आप इन्हें बतला दीजिये कि इनका ट्रांसफर आपने क्यों किया है ?'

'सर…सर ! आप मुझे 'इन्सल्ट' कर रहे हैं…मुझे 'ह्यूमिलिएट' कर रहे हैं… इनके गुण बताऊं आपको ? इनके खिलाफ इनके हेडमास्टर की शिकायत है… और भी बहुत-सी बातें है ।'

'ठीक है, डिप्टी साहब ठीक है।'''लो मिस्टर। अब तो तुम्हारा भ्रम टूटा। बिना मतलब कौन किसी का ट्रांसफर करता है। क्या हमारे डिप्टी साहब फालतू आदमी हैं ?'

'सर यही बात आपको अंधकार में रखने की है। शिकायत बिना मतलब की जा सकती है, शिकायत करायी जा सकती है। ऐसी शिकायतों के पीछे व्यक्तिगत द्वेष होता है।'

'मिस्टर। तुम्हारी दलील भी ठीक है। यह दलील 'अपील' तो करती है। कहिए डिप्टी साहब। आपके पास इस दलील का क्या उत्तर है ?'

'मैं बेहूदा दलीलों के उत्तर नहीं देता। यह व्यक्ति अव्वल दर्जे का धूर्त और मक्कार है। यह आपकी सादगी का लाभ उठा रहा है।'

'देखिये सर। डिप्टी साहब मुझे गाली दे रहे है, आपकी समझदार बात को काट रहे है। सर'''दाल में कुछ काला अवश्य है''''मैं तो चला जाऊंगा, पर आपके राज्य में यह अंधकार रह ही जायेगा।'

'डिप्टी साहब। आप बहुत जल्दी नाराज हो जाते है। हम आपको शांत स्वभाव देखना चाहते है। आप बहुत जल्दी 'डिस्टर्ब' हो जाते हैं। यह तो आपको मानना ही पड़ेगा कि जिस व्यक्ति को चोट लगेगी, वह उसका उपचार तो करायेगा ही।'

'सर'''सर ! यह व्यक्ति नैतिक दृष्टि से गिरा हुआ है। इनकी शिकायत व्यक्तिगत द्वेष से नही की गयी है। इनके विरुद्ध संगीन जुर्म लगे हुए हैं। मैं खुद 'इन्क्वायरी' करके लौटा हू। इनके विरुद्ध कई गवाह, कई प्रमाण तथा कई 'चार्जेज' हैं।'

'मिस्टर। तुम्हें अपराधी पाया गया है। यह बात 'इन्क्वायरी' से प्रमाणित हुई है, अत. अकाट्य है। अब तुम जा सकते हो।'

'सर मैं तो चला जाऊंगा, पर आपके राज्य में भी न्याय नही है, ऐसा अवश्य कहूगा। यहां भी अन्धकार है और छोटे-बड़े अफसर आपकी शक्ति का दुरुपयोग करते हैं।'

'मिस्टर'''ऐसी बातें क्यो कहते हो ? हम सबकी बातें सुनते है।'

'सर। आप तो न्यायमूर्ति हैं, पर आपके डिप्टी साहब सर छोड़िये'' मुझ इनसे क्या मतलब ? इतना अवश्य कहूंगा कि डिप्टी साहब ने केवल उन लोगों से 'इन्क्वायरी' की जो मेरे दुश्मन थे। वे तो मेरे खिलाफ ही बयान देते।

ऐसी इन्क्वायरी से लाभ क्या ?'

'मिस्टर। तर्क तो तुम्हारा भी मजबून है। डिप्टी साहब। आप थोडे चूक गये। आपको कुछ 'इन्क्वायरी' इनके आदमियों से भी कर लेनी चाहिए थी। घटना-स्थल पर तो हमें तटस्थ होकर दोनो पक्षो की बात सुननी चाहिए।'

'सर···दो पक्षों का सवाल ही नही है। गांव के सभी लोग इनके खिलाफ हैं··· इन्होंने स्कूल फण्ड के पैसे खाये हैं, लडको से ट्यूशन के नाम पर 'कांट्रेक्ट' करके पैसा ठगा है। गाव की दो औरतों मे इनके नाजायज सम्बन्ध रहे हैं, परिणाम-स्वरूप ये गांव में दो बार पीटे जा चुके हैं। मैं और आपको क्या सुनाऊं··· इनके कारनामें आप सुन रहे हैं। दूसरा अफसर होता तो इनको नौकरी से निकाल देता।'

'हम समझ गये, डिप्टी साहब। हम समझ गये। आपको अब अधिक सुनाने की जरूरत नहीं। डिप्टी साहब। आप बहुत मेहनती हैं। यह आदमी तो बडा कमीना निकला। मिस्टर···गेट आउट।'

'सर · देखिये सर···क्षमा कीजिये सर। आपको डिप्टी साहब ने बेकार में ही भडका दिया है सर ·'

'हमें कोई नहीं भडका सकता। तुम निहायत बदमाश आदमी हो··'

'सर मुझे तो आप कुछ भी कह लें, पर डिप्टी साहब ने ये मन-गढंत आरोप खोजकर आपको मेरे प्रति नाराज किया है। सर · मुझे क्षमा करें · यह आपको अंधकार में रखने का प्रयास है। इन आरोपों का आविष्कार मेरे हेडमास्टर और डिप्टी साहब ने आपस में मिलकर किया है। डिप्टी साहब भी मुझसे पूरे 'प्रेज्युडिस्ड' हैं।'

'शट-अप यू ईडिअट!'

'डिप्टी साहब आप नाराज बडे जल्दी हो जाते है, क्रोध आप पर हावी हो जाता है और आप मानसिक सन्तुलन खो बैठते हैं। मानसिक सन्तुलन तो······'

'सर आप भी गजब कर रहे हैं। आप इतनी देर से ऐसे निकम्मे व्यक्तियों के साथ अपना बहुमूल्य समय बरबाद कर रहे हैं। आप गलत आदमी को प्रश्रय दे रहे हैं।'

'डिप्टी साहब। यही हमारी खूबी है। यह बात आपको दूसरे अफसरों में नहीं मिलेगी। हम गलत और सही दोनों पक्षों की सुनते हैं, जो आप भी नहीं करते।'

'वेशक सर। आप न्याय-मूर्ति है। मैं तो बडी उम्मीद लेकर आपके दरवाजे तक आया हू। मुझे पता है कि आप प्रलोभनो तथा वहकावों में नहीं आते। ऐसे आफिसर ही न्याय कर सकते हैं।'

'मिस्टर। तुम ठीक कहते हो। हम तुम्हारा ट्रांसफर 'केन्सिल' करते हैं। डिप्टी साहब ! आपने इस 'केस' में वडा परिश्रम किया है, यह मानना ही पडता है। यह वात तो मिस्टर तुम्हें भी माननी ही पड़ेगी…'

'वेशक सर।'

'तो डिप्टी साहव हम आपकी परसनल फाइल में आज ही एक प्रशस्ति-पत्र जोड़ देंगे। कुछ समय वाद आपके प्रमोशन के वारे में भी 'मैरिट' के आधार पर सोचेंगे। अब तो आप दोनों संतुष्ट हैं न ?'



हारमोनियम

डा० मदन केवलिया

■

अन्दर-ही-अन्दर जल-भुन जानेवाली प्रतिक्रिया मुझ में हो रही है। ऐसा जान पड़ता है कि भीतर के ज्वालामुखी से शीघ्र ही विस्फोट होगा और शरीर का एक-एक कण बिखर जायेगा, जिसे कोई भी सम्भाल नहीं पायेगा। आखिर मैं भी इन्सान हू, पत्थर-दिल बुत नहीं हू, जिस पर किसी बात का असर ही न हो। मैं तो एक ऐसा इन्सान हू, जिसके दिल की गहराइयों में सिवाय जख्मों के और कुछ भी नहीं है, और जो उनकी चिन्ता किये बिना जिन्दगी गुजार रहा है, जिसके चेहरे पर मुसकराहट का एक 'मॉस्क' लगा है, जो दुनिया को धोखे में रखे हुए है।

मेरी आशाओं की जड़ें हमेशा से मजबूत रही हैं, जिनकी वजह से मैं फल-फूल पाया हूं अब तक, किन्तु अब ये सूखती जा रही हैं। मेरे आदर्श, जो दुनिया के

लिये एक चुनौती थे, आज कुचले हुए फूलों की तरह इस घर के कोनों में अन्तिम सांसें गिन रहे है। नदी में अचानक तूफान आ जाय तो नाव का दोष नही रहता है, किन्तु जो अपनी नावें तूफान के वक्त ही दरिया में डाल दे, उनको क्या कहा जाये ? मैंने भी अपनी नाव जान-बूझकर तूफानों के हवाले कर दी है। फिर दोष किसको दू ?

आज के दुख-दर्द बताने से पहले मैं आपको अपने जीवन की करुणामयी पृष्ठभूमि से अवगत करा देना चाहता हू। इसके बदले आपसे सहानुभूति की अपेक्षा मुझे नहीं है, क्योंकि उससे मेरे घाव भर नहीं सकते, हरे अवश्य हो जायेंगे। और फिर आज के जमाने में सहानुभूति भी तो एक भ्रम, एक छलावा मात्र रह गई है। जब घरवाले ही सहानुभूति और व्यंग्य में कोई अन्तर नहीं समझते तो औरों से क्या शिकायत ?

कभी-कभी आदमी की जिद्द उसे ले डूबती है। हमेशा ही ले डूबती होगी, पर मैंने जीवन में केवल एक ही जिद्द पकडी थी और वह ही मुझे ले डूबी। वैसे सगीत का शौक कोई बुरी बात तो नही ! आखिर पिताजी भी तो शास्त्रीय सगीत में पारगत थे और प्रात चार बजे उठकर अनेक राग-रागनियों का अभ्यास किया करते थे। बचपन से ही मैं उनके पास बैठकर संगीत सुना करता था। यह दूसरी बात है कि हमारे छुटपन से ही सिनेमा का प्रभाव हम पर अधिक पड़ने लगा था और सगीत की धारा गली-कूचों में बहने लगी थी। अतः बचपन ने इस सगीत सागर में गोता लगाया था और बहुत से मोती बीन लाया।

तो सगीत का शौक तो शुरू से ही था, पर यह पता नही था कि आज जिसे मैं वरदान समझ रहा हू वही बाद में अभिशाप सिद्ध होगा और मेरे सारे सपनो पर कोहरा छा जायेगा।

यह आज से पाच साल पहले की बात है। इन्कमटैक्स विभाग में नोकरी लगी ही थी कि घरवालों ने शादी की बात शुरू कर दी। लोग भूल जाते हैं कि कई लोग विवाह के लिये सर्वथा अनुपयुक्त होते हैं—शारीरिक दृष्टि से नहीं, मानसिक व पारिवारिक दृष्टि से। मानसिक दृष्टि से मेरा अभिप्राय उनलोगों से है, जो साहित्य, संगीत व कला के पीछे दीवाने होते है और विवाह उनके मार्ग में एक बहुत बड़ी बाधा होता है। पारिवारिक कलह की सूची में विवाह एक नये कलह का सूत्रपात करता है और फिर प्रत्येक व्यक्ति का विवाह हो ही, यह भी कोई आवश्यक नहीं है। पर पता नहीं क्यों लोग मेरे दृष्टिकोण को कभी समझ नहीं पाये।

...तो विवाह की बात-चीत शुरू होने पर भी मैं अपने कार्यों में व्यस्त रहा। इन्कमटैक्स की नौकरी होती ही ऐसी है। सुबह से रात तक कोई-न-कोई मुसीबत बनी ही रहती है, किन्तु इतना होते हुए भी संगीत के प्रति मेरे झुकाव में कोई कमी नहीं आई, बल्कि ऐसा हुआ कि पहला वेतन मिलते ही एक हारमोनियम खरीद लाया, जिसकी घर और पडोस में मिली-जुली प्रतिक्रियाए हुई।

'अब तो तानसेन भी अपने कर्मों को रोयेगा।' एक आवाज उठी।

'चलो, अच्छा है, इस बहाने घर तो बैठेगा। लड़कीवाले आते हैं, तो मिलता ही नहीं।'

'मगर पास-पडोसवालों को सोने का प्रबन्ध कहीं और करना होगा।'

किन्तु इन बातों से निरुत्साहित होने का प्रश्न ही नहीं था। दूसरे दिन से ही महफिल जमने लगी। अपने-आप ही अंगुलियां हारमोनियम के पर्दों पर थिरकने लगीं।

कहते है न, कि कोई अभागा अगर समुद्र में डूबने जाता है, तो समुद्र भी सूख जाता है। भाग्य कहो या संयोग या कुछ भी, ऐसा कुछ होता अवश्य है, तभी तो मनुष्य इधर-उधर थपेड़े खाता फिरता है, गिरता और सम्भलता है—वह भी किसी शक्ति के सहारे। इसी भाग्य ने मुझे भी कई बार पटका और पछाडा है, इसीलिये एक टूटा और हारा हुआ एक खोखला इन्सान भर रह गया हूं। हां, तो हारमोनियम आने के बाद जो चाह मन में जगी वह यह कि काश, कोई गाता और मैं बजाता। गानेवाला मेरा जीवन-साथी के अतिरिक्त और कौन हो सकता था? साज और आवाज! आवाज और साज!

इन्सान की सभी इच्छाए अगर पूरी होने लगें, तो यह दुनिया दुनिया क्यों कहलाये, स्वर्ग न कहलाये? घरवालों को साफ-साफ कह दिया, 'संगीत जाननेवाली लडकी से ही मैं शादी करना चाहता हूं, धन-दौलत की मुझे चाह नहीं।'

यह फरमाइश ऐसी नहीं थी, जिसके लिये बडी परेशानी उठानी पड़े—क्या मेरी इतनी-सी इच्छा भी इस दुनिया में पूरी नहीं हो सकती? और लोगों की तो सारी इच्छाएं पूर्ण हो जाती हैं? क्या मैं इतना हतभागा हूं?

इतना स्पष्ट हो जाने के बाद भी घरवाले ऐसी लडकियों की तलाश में रहे जो उनलोगों को 'सूट' करती हों, मुझे नहीं! फलत मैंने किसी भी लडकी से विवाह करने से इन्कार कर दिया, जिसका नतीजा हुआ मेरा सामाजिक बहिष्कार! समाज में खाना-पीना, उठना-बैठना बन्द हो गया। तरह-तरह के लांछनों ने

मेरा हृदय छलनी कर दिया। आखिर वह दिल ही तो है, पत्थर नहीं। गालिब ने कहा था न, 'दिल ही तो है, न संगोखिश्त, दर्द से भर न आये क्यों ?'... मेरे दिल में भी दर्द भरता रहा।

मेरा यह मतलब कदापि नहीं था कि लड़की संगीत में डिप्लोमा या डिग्री-होल्डर हो। मतलब इतना ही था कि हमारी प्रसन्नता के लिये वह गा सके, बस ! लेकिन यह सौदा जीवन की सारी इच्छाएं, कामनाए व खुशियां ले डूबा। यह ऐसी जिद्द थी, जो भविष्य को अन्धकार के गर्त में डालनेवाला थी और उस गर्त से जीवन कभी उभर नहीं सकता था। कहते हैं कि घूरे के भी दिन फिरते हैं, पर यह कहावत मेरे सूने जीवन को बदल न सकी, बदलना मुझे ही पड़ा।

...और थककर जिस दिन मैंने घरवालों से कहा कि 'संगीतवाली बात छोड़ो, कोई अच्छी लड़की हो,' तो···वे जैसे गले पड़ गये, 'अब इस उम्र में अच्छी लड़कियां कहां मिलेगी ? उन सबकी तो शादी हो गई है, बच्चे भी हो गये।'

'क्यों तानसेनजी ? तानी नहीं मिली क्या ?'

'सच्चे प्रेमी तो किसी की तलाश में सारी उम्र गंवा देते हैं। आपने अभी से हथियार डाल दिये ?'

'अंगूर खट्टे निकले !'

क्या ये आवाजें धड़कते दिलवाले इन्सानों की हो सकती है ? 'पर-पीड़ा' को किसने समझा है ? सहानुभूति का मरहम कहीं नहीं, गालियों का नश्तर और यह जीवन ! बस, यही कुछ मेरी सम्पति रही है। 'घुल गयी जवानी गम के खारे आंसू पीकर !' कहते हैं कि सुख-दुख जीवन रूपी सिक्के के दो पहलू हैं। पर सुखवाला पहलू मेरे सामने तो कभी नहीं आया। मैं मानता हू कि दुःखी होने पर प्रत्येक व्यक्ति अपने-आपको दुनिया का सबसे अधिक हतभागा इन्सान समझता है, पर मेरी कहानी तो स्वयम्-सिद्ध है...।

शादी हुई। मैं एक मौन, वीतरागी की तरह इस नाटक को देखता रहा। तटस्थ-सा। जो मेरा भाग था, वह मैंने खेला। अपने-आपको बहने दिया।

आपको अब अधिक कष्ट न देकर आपबीती समाप्त करता हू। पिछले सप्ताह ही मैं दुल्हन को घर लाया था। खिन्नता और अवसाद की परतें, जो मन में जम चुकी थीं, उन्हें नई उमंगों और आशाओं में धीरे-धीरे कुरेदता रहा। एक बात मैं जानता हूं कि बचपन में पड़े संस्कार मिटाये नहीं मिटते। उनके लिये

परिश्रम करना ही व्यर्थ है। संगीत की चर्चा तो कब की मृतप्राय हो चुकी थी। इस समय उसकी चर्चा सामयिक भी नहीं। घाव जल्दी भरता तो नहीं है, पर पट्टी बधी रहे तो लाभ ही होता है। पर आज वह पट्टी अचानक ही उठ गई, अनजाने ही...

इसीलिये तो लग रहा है कि भीतर के ज्वालामुखी से शीघ्र ही विस्फोट होगा और शरीर का एक-एक कण बिखर जायेगा, जिसे कोई भी सम्भाल नहीं पायेगा, यहां तक कि मेरी पत्नी रीता भी नहीं, जिसे स्वयम् पता नहीं कि उसने अनजाने में ही मेरे दर्द को और तीखा कर दिया है।

बात यह हुई कि आज सुबह रीता पहली बार, आराम से मेरे कमरे का निरीक्षण कर रही थी। मेरी पुस्तकें, मेरे पत्र व दूसरी बिखरी हुई चीजें मेरे अस्त-व्यस्त जीवन की स्पष्ट कहानी कह रही थी। रीता ध्यान से इन्हें देखती रही। विवाह के बाद लडकी अपने पति की प्रत्येक वस्तु पर क्या, प्रत्येक ख्याल पर भी अपना अधिकार समझने लगती है। पर वह यह नही जानती कि पति की जो भावनाए परिपक्व हो चुकी हैं उनमें भला क्या परिवर्तन होगा? बस सारी बातों की जड़ यही है। मैंने तो फिर भी अपने को हर बात के लिये बहुत मोड़ा है।

तो रीता चीजें देखती रही और मैं रीता को, जिसे देखकर पड़ोसवालों की बातें अब भी कानों में गूंज रही थीं—

'बस, इसके लिये उम्र भर इन्तजार कर रहा था? इससे तो कुंवारा रहता तो ठीक था!' 'पहलेवाले मालदार भी खूब थे। इससे तो वे अच्छा देते। पर पता नहीं राजन (मुझे) को क्या हो गया था कि नाचने-गानेवाली लड़की की तलाश में था। हु...देखो अब कैसी मिली?'...

'नाचने-गानेवाली लड़कीवाली' बात सुनकर भी मैंने खुद को सम्भाल लिया था। जब खुद का भाग्य ही ऐसा हो तो दूसरो को दोष देने से क्या लाभ! मैंने तो अपने पैरों पर खुद ही कुल्हाडी मारी थी, पर अब इलाज भी क्या था? तीर हाथ से निकलने पर वापिस तो लौटता नहीं।

'कोई बात नहीं, रीता ही सही। अब फिर से नयी जिंदगी शुरू करूंगा और...'

विचार-धारा को बीच में ही तोडती हुई रीता ने पूछा, 'यह हारमोनियम किसका है?'

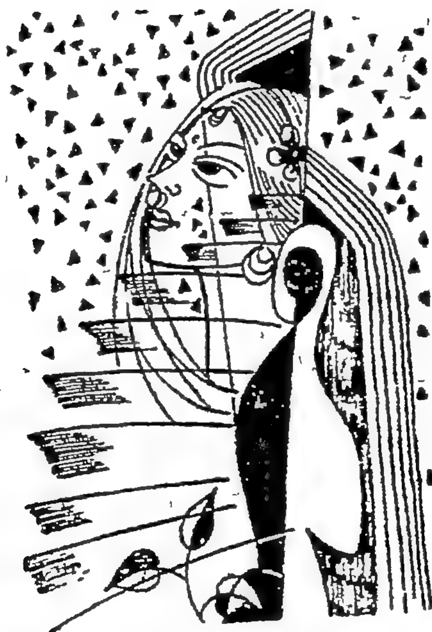
मैंने धूल भरे हारमोनियम को युगों बाद देखा। आंखें जैसे गीली हो आयीं।

ज़िंदगी कितनी मुश्किल है ?

मेरे कुछ कहने से पहले ही रीता ने कहा, 'जिसका है, उसके यहां पहुंचा दीजिये न।'

'मेरा ही है।'

'आपका ?' उसकी आंखें आश्चर्य से फटी रह गईं। 'आप हारमोनियम बजाते हैं ? खूब ! इस बार गाने-बजानेवाले भिखारी आयें, तो मैं उन्हें दे दूंगी, मैं इसे घर में नहीं रखने की।'



धुंआ

शचीन्द्र उपाध्याय



तालाब से आती हुई हवा जब ठण्डी हो जाती है और गाव से उठना हुआ धुआ आकाश में तहें बनाने लगता है, तब खेतों से चलकर वह पीपल के पास आता है और एक निश्वास फेंककर धीरे से बैठ जाता है।

समय का अनुमान लगाने के लिए वह ढलते हुए सूरज की ओर देखता है—तब उसे महसूस होता है कि समय अधिक नहीं हुआ है। घर जाने की उसे जरा भी जल्दी नहीं है। तालाब के किनारे चर रहे अपने बैलो की ओर देखता हुआ वह आराम से पसर जाता है और मुह से कुछ गुनगुनाने लगता है।

रोजाना वह इसी समय इधर आती है। कभी गांव से और कभी खेतो से। पीपल के पास नाले के दूसरी ओर बबूलो के घने पेड़ हैं। पेड़ो के बीच युगो पुराना मदिर है—भूमियो का मदिर। जब से मनोहर ने नौकरी छोडी है, वह

रोजाना उसे इधर आता देखता है। हालांकि उस रात घोर अंधेरा था, लेकिन हरको को वह जरा भी नहीं भूल पाता। उसने उसे अच्छी तरह देख लिया था। उसे दुख होता है कि हरको उसे नहीं पहचान पाती। या फिर न पहचानने का बहाना करती रहती है।

वह नहीं समझ पाता कि इस पुराने मंदिर में हरको क्यों आती है। गांव से दूर यह मंदिर वैसे भी अकेला खड़ा है। युगों से वर्षा झेलते हुए मंदिर के पत्थर काले पड गये हैं। आसपास इतनी झाड़ियां उग आई है कि मंदिर तक पहुचने के लिए बड़ी सतर्कता के साथ चलना पड़ता है।

गांव से कोई भी इधर नहीं आता। आने का साहस भी नहीं करता। साल में एकाध बार मंदिर में दीपक जलता है—वह भी तब, जब गांव में हुई शादी में दूल्हा-दुल्हिन जोड़े से मंदिर ढोकने आते हैं। उस दिन यहां सफाई कर दी जाती है। लेकिन बाद में वही वीरानगी छा जाती है।

नौकरी से इस्तीफा देने के बाद उसने अपने पड़ोसी से आकर कहा था, 'पेटमैन की नौकरी भी कोई नौकरी है। रात-दिन जान खतरे में। हर समय घंटियों की टनटनाहट। बात-बात में स्टेशन मास्टर के मुह से निकलती हुई गालियां…। उससे यह सब नहीं सुना जाता। यह सब सुनते-सुनते वह ऊब गया है। जब औरत ही दगा दे गई तो वह नौकरी करके क्या करेगा ?'

मनोहर वैसे भी अकेला था। उसकी ब्याहता उसे वर्षों पहले छोड़ गई थी। छोटा-सा कच्चा घर और बीस बीघे खेत…। उसकी आंखों के आगे वह रात बार-बार घूम जाती है। उसकी देह का रोम-रोम उस रात को याद कर सिहर उठता है।

गाड़ी निकलने के बाद वह सिगडी के पास बैठा हुआ आराम कर रहा था। तभी बगल में पोटली दबाये हरको मुसाफिरखाने में आई थी।

'ए, बाई ! यह धरमशाला नही। यहां ठहरने का हुकुम नहीं है। जाओ, गाड़ी के टेम पे आ जाना।' उसने हरको को एक निगाह देखते हुए कहा था।

आकाश में बादल थे। पानी बरसने को हो रहा था। मनोहर की बात सुनकर हरको की आंखें डबडबा आई थीं।

'तुम जहां कहो चली जाऊंगी। दुखिया हूं जमादार जी…। लेकिन इस काली रात में कहां जाऊंगी। औरत की जात। तुम्हारे पैरों पडती हूं…।'

स्टेशन के बड़े बाबू को मनोहर जानता था। बड़े बाबू के किस्से सारे डिवीजन

में फैले थे। औरत मात्र की सुनते ही बड़े बाबू सो काम छोड़कर टूटते थे। बकरी के अकेले मेमने पर टूटते हुए कुत्ते की तरह…।

उसे यह विश्वास हो गया कि हरको घर से भागकर आई है। पहले मनोहर ने सोचा कि वह अपने काम पर चुपचाप चल दे। अभी बड़े बाबू के हाथ पड़ जाएगी और सारा घर से भागना निकल जायगा। लेकिन हरको की डबडबाई आंखें देखकर उसका यह विचार बदल गया।

'जाओ। यह चाबी लो।' उसने हरको की ओर चाबी बढा दी और अपने क्वार्टर की दिशा में हाथ उठाता हुआ बोला, 'वो सामने मेरा क्वार्टर है। कोई पूछे तो कह देना कि मनोहर के यहां मेहमान आई हू। आराम से जाकर सोओ।'

हरको ठंड से कांप रही थी। पत्थर के कोयलों की आंच में तापते हुए मनोहर को गौर से उसने देखा। उसका सीना उठ-गिर रहा था। अंधेरा गहरा था। आकाश में बादल थे और हवा सन्नाटे भरती हुई बह रही थी।

उस रात मनोहर की रात की नौकरी थी। इस स्टेशन पर रात में गाड़ियां नहीं आतीं। अन्तिम गाड़ी शाम को सात बजे निकल जाती है। उसके बाद सुबह चार बजे तक कोई गाडी नहीं आती।

हरको उसकी बात की गहराई पर गौर करती हुई अन्धेरे में देखती रही। अन्धेरे में धब्बे-सा क्वार्टर साफ दिखाई दे रहा था। मनोहर बीडी पीता हुआ वैसे ही बैठा था।

इसी समय टेलीफोन की घंटी बजी और वह अपने स्थान से उठ गया।

'ए, तुम अभी तक यहीं बैठी हो? फौरन चली जाओ। टेलीफोन की घंटी बोल रही है। बड़े बाबू को बुलाने जा रहा हूँ।'

इस बार हरको अपने स्थान से उठ गई और चाबी अपनी मुट्ठी में दबाये मनोहर के क्वार्टर की ओर चल दी।

जब तक बड़े बाबू टेलीफोन पर बात करते रहे, मनोहर उनके पास खड़ा रहा। अन्त में बड़े बाबू झल्ला गये। अंग्रेजी में होती हुई बातें मनोहर की समझ में नहीं आई। लेकिन बड़े बाबू की मुद्रा से वह समझ गया कि बातों का रुख किधर जा रहा है।

'ए, मनोहर!' टेलीफोन का चोंगा वापस बक्स पर पटकते हुए बड़े बाबू बोले—

'ऐसी की तैसी साला टी० आई० की ! तुम जाकर एक केसर-कस्तुरी लाओ। साला हर समय इन्क्वायरी में बात करता है।'

मनोहर जानता था कि गेरा बाबू को जब नींद नही आती या कोई चिन्ता होती है तो वे बोतल लेकर बैठ जाते हैं। पीने का क्रम फिर नही टूट पाता। आधी-आधी रात को उसे बोतल लेने जाना पड़ता है।

पहले घर पर पीना कम होता था ! बीबी जी सामने से बोतल उठा ले जाती थी और पत्थर पर फेंककर तोड़ देती थी। लेकिन पिछले साल बीबी जी टी बी से मर गई। तीन बच्चे थे जिन्हें गेरा बाबू अपनी बहिन के पास छोड़ आए। अब कोई टोकने वाला नही।

बोतल की कहकर गेरा बाबू सिगड़ी के पास चले आए। अब तक वे न जाने कितना नशा कर चुके थे। सिगड़ी में दहकते अंगारों की तरह ही उनकी आंखें दहक रही थीं। नशा करने के बाद गेरा बाबू का चेहरा डरावना लगता है। नथुनें फैल जाते हैं। सारी देह लड़खड़ाने लगती हैं और वे मुंह से अंट-शंट बकने लगते है।

मनोहर अपनी जगह से नही हिला। बड़े बाबू सिगड़ी के पास बैठे हुए बड़बड़ा रहे थे। जब देर तक भी मनोहर अपने स्थान से नही हिला तो वे मनोहर की ओर क्रोध से देखते हुए बोले, 'अब तक तू यहीं है—स्साला...!'

'कलाल के पिछले पैसे,, साब...।' मनोहर-जोर देकर बोला। बड़े बाबू की गाली इस बार उसे चुभ गई। उसे लगा, जैसे हरको पास ही अंधेरे में खड़ी है और उसने बड़े बाबू की गाली सुन ली है। इससे अपने आपको बेहद अपमानित महसूस करता हुआ वह भीतर ही-भीतर कुढ गया। कलाल के पिछले पैसे काफी हो गये थे और अब वह शराब उधार नहीं देगा, यह मनोहर जानता था। हरको को अकेली छोड़कर वह जाना भी नहीं चाहता था। हरको के आने की किसी को जरा भी खबर नहीं हुई थी, फिर भी बड़े बाबू से वह बुरी तरह डर रहा था।

बड़े बाबू नशे में झूम रहे थे। मनोहर की पैसे वाली बात से उनका पारा और चढ़ गया। वे झूमते हुए उठे और स्टेशन की तिजोरी से सौ का नोट निकाल कर ले आए।

'ले स्साले! जल्दी जा। कलाल की...में फेंककर कह देना—स्साले को स्टेशन पर कदम नहीं रखने दूंगा।

सौ का नोट मुट्ठी में थामे असमंजस मे पड़ा मनोहर अंधेरे में देखता रहा। बड़े बाबू के आगे वह कितना बौना है, इस पर सोचता रहा और फिर तेजी से अंधेरे मे खो गया।

जब वह लौटकर आया तो बड़े बाबू सिगड़ी के पास नही थे। अचानक ही उसे लगा कि बड़े बाबू को हरको का पता चल गया है और वे उधर ही चले गये हैं। यह कल्पना करते ही उसकी देह का रोम-रोम खड़ा हो गया।

वह तत्काल बड़े बाबू के क्वार्टर की ओर बढ़ गया। जब उसने बड़े बाबू को उनके क्वार्टर में चारपाई पर पसरे हुए देख लिया तो उसे तसल्ली हुई। बोतल उन्हे थमाकर वह स्टेशन पर लौट आया। स्टेशन पर आकर उसने ताले आदि देखे और फिर अपने क्वार्टर की ओर चल दिया।

चारों ओर सन्नाटा फैला था। अंधेरे को चीरती हुई कुत्तो की आवाजें कभी-कभी सुनाई दे जाती थीं। हालांकि उसकी रात की नौकरी थी, टेलीफोन की घंटी कभी भी बज सकती थी, फिर भी स्टेशन पर रहना उसे असह्य लग रहा था। पांच साल की नौकरी मे यह पहला मौका था, जब उसने ड्यूटी छोड़ी थी।

दरवाजे के पास हरको डरी हुई बैठी थी। किवाड़ से माथा टेके शायद वह रो रही थी। मनोहर को देखकर उसमें थोड़ी हलचल हुई। 'कौन ?' हरको की आवाज कांप रही थी।

'मैं हू।' मनोहर ने धीरे-से ही कहा और आगे बढ़ गया। हरको ने ताले को छुआ भी नहीं था। उसने खुद कापते हाथो से ताला खोला और भीतर जाकर बरामदे मे कंबल फेंकता हुआ बोला, 'इधर आ जा और सो जा।'

कंबल फेंककर वह दरवाजे की ओर देखने लगा, लेकिन हरको अपनी जगह से जरा भी नही हिली। वह उसी तरह बाहर बैठी रही। हरको भीतर क्यो नही आ रही है, इसका कारण वह समझ गया। उसने थोड़ी खीझ के साथ, लेकिन धीरे-से ही कहा, 'यहा मैं नही सोऊंगा। मैं तो वापस स्टेशन जा रहा हूँ। तुम आराम से सोओ। सुबह चार की गाड़ी से जहा जाना हो, चली जाना। ताला वहीं कुन्दे में अटका है, जाते समय लगा देना। मैं स्टेशन पर ही मिल जाऊंगा।'

लेकिन उस रात हरको गाड़ी से नही गई। मनोहर ने सुबह उसे तालाब से आते हुए देखा था। उसे देखते ही हरको ने घूंघट निकाल लिया और भूमियो

के मंदिर की ओर चली गई थी। उसी दिन मनोहर ने नौकरी से इस्तीफा दे दिया था। उस दिन के बाद वह बेहद उदास रहने लगा था।

दिन भर वह जंगल में बैल चराता रहता और शाम होते-होते तालाब की ओर चला आता। तालाब से लगा हुआ ही मंदिर था। हरको जब मंदिर से चली जाती तो उसे लगता कि उसके जीवन में बेहद खालीपन भर गया है··· ऐसा खालीपन जो उसे खोखला करता जा रहा है।

उसकी आंखें बाद में गांव के कच्चे घरों पर अटक जातीं। सारा गांव चूल्हों से उठते धुए में डूबा विशाल धब्बा-सा नजर आता और मनोहर उस धुए मे न जाने क्या खोजने लगता!



सीमा

प्रेमलता रावत



३० मई

ऐ,

आज जी चाह रहा है, कुछ लिखू। क्या लिखना है कुछ पता नही, बस, तुम्हारे नाम से, तुम्हें सम्बोधित कर कुछ लिख डालने की इच्छा हो रही है। न कोई बात, न विचार, किन्तु मन की तो एक अजीब जिद् है न। खैर, जब कलम ले ही ली है तो पन्ने भी भर ही जायेंगे; आधार तुम, ख्याल हमारे। मन की जिद् तो पूरी करनी ही होगी·· क्यो, ठीक है न? किन्तु हा, यह खुदा ही जाने, मन की यह जिद् तुम तक पहुच पायेगी भी या नही? सीमा अपने-आपमें कितनी मजबूर है, इसे अन्य कोई तो क्या, यह खुद ही कितना जानती है!

रवीन्द्र! (इस तरह नाम और 'तुम' का प्रयोग अच्छा नहीं लग रहा, किन्तु मजबूर हू, पत्र भर के लिये मुझे इजाजत दो कि मैं इनका उपयोग कर सकू, वर्ना मुझसे कुछ लिखा ही नही जायेगा।) हा तो रवीन, नही जानती, मन के किस

कोने में से भाव निकल पन्ने भरवाने या कहूं, कुछ लिखवाने में समर्थ होंगे, अन्तन् का प्रत्येक कोना तो सूना है, नितान्त मूक, मौन। कैसी स्थिति है, जानते हो? रहने दो, तुम्हें उससे करना ही क्या है? भगवान ना करें कभी कोई ऐसी विडम्बना में…। वैसे अच्छा है इस सूनेपन की स्थिति में 'द्रष्टा' की भांति सारी स्थिति को जांच पाऊँगी।

हां तो, रवी, आज तुमने इल्जाम लगाया है कि मैंने एक उलझन में रखा है तुम्हें, क्यों नहीं तभी…। पर कब? कब रवी? तुम्हीं से पूछती हूं, कब? समझने-सोचने-कहने का मौका ही कब मिला? पहले समझा नहीं, समझा तो सोच नहीं पाये, सोचने के बाद लगा, कहने को कुछ रह ही नहीं गया। उफ्, मैं कुछ नहीं समझ पा रही हूं, कैसे कुछ…

अच्छा, तुमसे पूछती हूं, मेरा तुमसे बोलना गलत था? काश, ऐसा कुछ समझ पाती तो फिर नहीं ही बोलती! पर ऐसा कुछ सोचने का कारण? छि, रत्ती भर भी मेरे मन में कुछ नहीं था, बिल्कुल सहजता से तुमसे बोलने लगी थी, वैसे न बोलने की आदत मुझे है भी नहीं…

१ जून

कल अचानक छोड़ देना पड़ा, बहुत रात हो गई थी। आज तुम्हारा फोन नहीं आया, मुझे विश्वास था ऐसा ही होगा, फिर भी अजीब-सी पीड़ा रही पूरे दिन। तुम्हारी कसम, बिल्कुल स्वच्छ मन से कहती हूं, सब कुछ खाली-खाली, टूटा-टूटा-सा लग रहा है, नहीं जानती क्यों? पर रवी, यह बहुत ही अच्छा रहा। दो दिन की पीड़ा जिन्दगी भर की तड़पन से ज्यादा बेहतर है।

हूं, तो क्या लिखना है? आज जबरन लिख रही हूं केवल पूरा करने की जिद से लिखने से अरुचि-सी हो गई है। कुछ लिखने की बजाय आँखें बन्द कर सोचते रहने को जी चाह रहा है। पर जो शुरु कर दिया है उसे पूरा कर ही डालना अच्छा रहेगा न। किन्तु रवी, इन सबसे अब क्या फायदा…क्यों लिख रही हूं यह सब? बिल्कुल मुक्ति देकर फिर से यह सब भेजना…। जो हो, यह तो पूरा करना ही है, एक ऐसी कहानी जिसका इल्जाम मुझ पर आ पड़ा है। कैसी मजेदार बात… पीड़ा भोगी, अपराधी बनी, उलहना सुना, ऊपर से यह आत्म-प्रताड़ना! वाह रे रवी! सहजता से बोलने का यह अच्छा उपहार दिया। न जाने कैसा सम्मोहन का प्रयोग था…अन्दर-ही-अन्दर सब कुछ

कमजोर पड गया था। लडकियो की कमी तो नहीं थी, वहाँ भी एक-से-एक बेहतर मैंने ही क्या बिगाडा था? क्या पाप किया था? बस, एक ही प्रश्न बार-बार आ रहा है, क्या मेरे द्वारा ऐसी कुछ गल्ती हो गई थी, जिससे तुम्हें गलतफहमी हो गई? उफ्, क्या मुझसे ही कुछ भूल हो गई थी?

कहा, कब कमजोरी आ गई ..? बहुत दबाव डालने पर भी मन यह स्वीकार नही करता कि मैंने जान-बूझकर तुम्हें ..। बल्कि सच कहती हू, तुम्हारी तरफ तो मेरा तनिक ध्यान भी नही गया था। उस दिन जब तुमलोगो की परोसगारी का काम मुझे सौंपा गया था और तुम्हारे इशारे पर सबलोगो ने मतलब-बेमतलब कभी पानी, कभी पूडी की एक के ऊपर एक फर्माइशो व ठहाकों से मुझे परेशान व चिढाने की कोशिश शुरू की थी, उसी दिन मैंने तुम पर ध्यान या कहू, तुम्हें देखा था (यानी भीड से अलग करके), तुम्हारी शरारत मैं पहचान गई थी, किन्तु जरा भी समझ जाने का भाव दिखाने का मतलब तुम्हारी शरारतों को स्वीकार कर लेना था, अत मैं बिल्कुल बिना झुझलाये सहज भाव से फर्माइशें पूरी करती रही।

खैर, ये सब साधारण बातें थीं। मन पर कही जरा भी धब्बा नही लगा था। किन्तु हां, तुम्हारी वह बात, 'और भी तो लड़कियां हैं, सबसे तो नही कहता', मेरे ख्याल से मुझे उसी समय पूछ लेना चाहिए था, 'तो फिर मेरे से ही क्यो कहते है?' लेकिन यह प्रश्न क्या बेवकूफी भरा-सा नही रहता? जबरन अपनी खासियत या प्रशसा सुनने की इच्छा जैसा। पर सच कहूँ, मुझे तुम्हारी उस बात से भीतर कही बेहद ग्लानि-सी हुई थी—'और लडकियाँ क्या इतनी ऊँची हैं जो उनसे नहीं कहा जा सकता, और मैं क्या इतनी सस्ती ·····?'

मुझे आश्चर्य होता है कि तुम्हारी चाहत को केवल मैं ही नही समझ सकी, अन्य सभी ताड गये, शायद तुम जान-बूझकर ही प्रचार कर रहे थे। छि', तुम्हारे इस बचपने के कारण मैं सबकी चर्चा का विषय बन गई। और इधर मैं अत तक यही सोचती रही कि मैं कोई महारानी या कोई अप्सरा नही हूँ जिससे बात किये बिना तुम्हारा जी सूख जायेगा या बात कर लेने से मेरा सम्मान घट जायेगा। जानने लगे हो अत बात कर लेते हो, इसमें कहाँ से क्या छूत लग रहा है? इज्जत घट रही है? मन में कोई विरक्ति, शका नहीं थी, रहने का कारण भी क्या था? तुम्हारा झुकाव ही होना था तो वहाँ लडकियो की कमी नहीं थी. एक-से-एक सुन्दर, प्यारी लडकियों की बजाय तुम इस······तुम भले ही सोच सके, मैं तो ऐसी बेवकूफीपूर्ण बात को न तो सोच सकती थी, न रत्ती भर भी

ऐसी चाह ही करती थी·· इसीलिए निहायत सहज भाव से तुमसे बात भी कर लेती थी, किन्तु उस दिन जब सुबह-सुबह तुमने बुला भेजा और सबने छेड़ना शुरू कर दिया तब सचमुच तुम पर बहुत गुस्सा आया। एकदम भरी हुई थी··· किन्तु उसी समय बारात आ गई, और अपनी सारी बात मुह में दबाये ही मुझे वापिस लौट आना पड़ा था, किन्तु मन-ही-मन सोच लिया था, 'अब तुमसे नही बोलूंगी।' यह कोई दुखप्रद विषय नहीं था, बल्कि सच कहू तो इस निश्चय का कोई असर मन पर हुआ ही नही। कही जरा भी फर्क नही पड़ा।

इसके बाद तुम्हारे प्रति मैंने एकदम गम्भीर रुख अपना लिया था। तुम भी शायद अन्दर-ही-अन्दर सहम गये थे। स्टेशन तक तुममें मुझसे आगे होकर बोलने का साहस नही हुआ था। किन्तु गाडी मे सब कुछ साधारण हो गया। तुमसे बोलने न बोलने की बात मैं एकदम भूल गई थी।

और फिर धीरे-धीरे मैं नही जानती कौन-सा कैसा सम्मोहन-सा · यहां इस समय मैं अपनी कमजोरी को बिल्कुल इन्कार नही करूंगी। तुम्हारे गाने, तुम्हारी आवाज, तुम्हारी दृष्टि—सब-के-सब मुझ पर हावी हुए जा रहे थे। बेहद-बेहद तीव्र पीडा, बेचैनी, घबराहट-सी मुझे पागल किये जा रही थी। जी चाह रहा था, तास फाड़ दू, खूब रोऊ ·या फिर कोई थपकी दे और मैं सो जाऊ। किन्तु बेचैनी इस कदर थी कि न कुछ बोलने की इच्छा हो रही थी, न सोचने की। समझदारी रोने भी नही दे रही थी। बस आंखें सम्मोहित-सी···

और जानते हो रवीन! उसी समय एक स्वप्न भी देखा · हां, ऊपर की बर्थ पर सोने के बाद तन्द्रावस्था के अन्दर नहीं, न पूरी नींद ही आई थी, न चेतनावस्था ही थी। तुमने धीरे-से मेरा हाथ पकडा और फिर अचानक अपने होंठो से मेरा मुंह इस कदर बन्द कर दिया कि मेरा सांस अन्दर-ही-अन्दर घुट गया। तडफडाकर मैं शायद 'छोडो·· छोडो' बुदबुदायी भी···सच में, या अन्दर-ही-अन्दर, मुझे मालूम नहीं···।

किन्तु रवीन, यह स्वप्न था या सत्य, यही तुमसे पूछना चाहती थी? 'यह तुमने क्या किया, रवि?' यह पूछने की सोचते-सोचते शायद या तो नींद आ गई, या फिर शायद स्वप्न मे ही यह पूछने की बात सोची हो। तुम्हारी क़सम, मुझे कुछ याद नहीं है। नहीं जानती कैसी बेहोशी थी, क्या था···उफ्, आज तो सोचते ही कैसा रोमांच हो आता है। अगर स्वप्न था तो कहना पडेगा मेरे ही मन के अचेतन में पाप छुपा था ·सत्य था तो·· 'तुम ऐसा कैसे कर पाये, छि!'

वह स्वप्न था या सच, जो हो, उसके बाद मुझे घोर नीद आ गई। आख खुलने के बाद अनुमान नहीं लगा सकी कि यह मेरी ही अवचेतन की कोई दबी प्रतिक्रिया थी या सच में तुमने ही इतना दुस्साहस किया था। कुछ अनुमान लगाने के लिए तुमसे प्रश्न भी किया था, 'क्या तुमने उचित किया था ?' तुमने क्या उत्तर दिया था, उस ओर मेरा ध्यान नही था, क्योंकि वह मेरी आशा के विपरीत 'क्या मतलब' मे नहीं था। कुछ शक हो चला, यह मात्र स्वप्न नही था, फिर भी विश्वास नहीं हो रहा था। कल तुमसे प्रश्न किया, तुम्हारा उत्तर भी उसी वात को सावित कर रहा था, पर अब भी ठीक नही समझ पा रही हूँ—क्या और कहां तक सच है ? तुम ही जानो !

वैसे उसके बाद अब बहुत रात हो गई है, लिखने की इच्छा नही है। पर सोचती हू, आज लिख गया सो लिख गया—यह अन्तिम होगा, उसके बाद मैं तुम्हारे सम्बोधन से कुछ न लिखू गी ··अत जो भी लिखना है, कहना है, वह अन्तिम रूप से आज ही समाप्त कर दिया।

रवीन, तुमने कहा था कल—'तुम्हें तब गाव में ही मुझसे बात नही करनी चाहिए थी—' आदि ··। मैं सोचती हू·· खैर छोड़ो ! यह सच है कि उस समय मैं तुम्हारी इस चाहत की कल्पना भी नही कर सकती थी। मैं नही जानती, यह पागलपन तुममे क्यो कर आया ? खैर, मेरे ख्याल से यह कोई गम्भीर बात नहीं है। जहा तक मैं समझती हू, तुम बहुत ही सरलता से सैटिस्फाई हो जाओगे। हा, इतना अवश्य है कि इसके लिए तुम्हें एक मनचाहे साथी की आवश्यकता है। इसके विना यानी इस अभाव में अवश्य मन में पीड़ा-बेचैनी-सी रहेगी जिसे भले तुम मुझ पर थोपते रहो, पर मैं जानती हू, यह मात्र है तुम्हारा पागलपन, बचपना, नासमझी ! 'सीमा' को तुम्हारे मन ने नही, अभाव ने चुना है, रवीन। कोई भी लड़की उन दिनो इस कदर तुम्हारे सम्पर्क में रहती, तब भी यही भाव उपजता—यह केवल भावुकता है, और कुछ नहीं, बस !

अपने लिए कहूगी, शुरू में सब साधारण था। ऐसी कोई खासियत तो मुझमें थी नही, इसलिए ऐसी वेवकूफीपूर्ण शका करने का प्रश्न ही नहीं उठता। शुरू में तुमसे बिल्कुल साधारणता व सरलता से मिली-बोली हू। धीरे-धीरे जटिलता ज्यों-ज्यों आती गई · आती क्या गई, यह लाई गयी थी ज्यो ही समझा, अन्दर-ही-अन्दर अपने को समेटना शुरू कर दिया, पर तुम्हारी सम्मोहन शक्ति जोरों पर थी। स्टेशन छोड़ते समय ऐसी गहन पीड़ा हो रही थी ··उफ्,

कुछ समझ में नहीं आ रहा था, क्या कर डालूं ! कलेजा जैसे अन्दर-ही-अन्दर फटा जा रहा था। जी चाह रहा था, कहीं अकेले में खूब रो लूं। समझदारी इन सबको पागलपन समझ दबाये जा रही थी ··खुद मैं अपनी पीड़ा को नहीं समझ पा रही थी। तुम मिले क्षण भर को,···जी चाहा अपने अन्तर की समस्त पीड़ा अंगुली से कलेजे से निकाल तुम्हें सौंप दूं, 'लो अपनी देन !'

खैर, अब लिखने को रहा नहीं, रवीन्द्र ! याद है, हम दोनों ने चैलेंज किया था, 'पक्के हैं'। पहले तुमने ही कहा था, 'मैं बहुत पक्का हूं'। सुनकर हराने की जिद्द चढ़ गई थी। फिर दूसरी बात, तुम्हारे ही कहे अनुसार मैंने जिद्द कर ली थी, 'अन्तिम ही मिलन होगा'। तुमने कहा था, 'हम मना लेंगे'। 'इतना सरल नहीं है'। और देख लो, नहीं ही है। सीमा दोनों ही बात में जीत गई थी। सब कुछ टूट ही गया था, दो टूक। किन्तु उस समय की तुम्हारी ··अब क्या कहूं···कहीं लगा था, जीतकर भी हार तो नहीं रही हूं ? कहीं मैं सचमुच जुल्म तो नहीं कर रही ? मानती हूं 'भावुकता है' पर कहीं यह सचमुच भावुकता न होकर·· लेकिन नहीं, ऐसा कुछ नहीं है। मुझे विश्वास है यह महज एक परिस्थितिस्वरूप उत्पन्न चाह है, और प्यार करने की जो आदत होती है न, वह आदत है, बस ! यह भावुकता, आदत, मन-बहलाव कहीं गम्भीरता धारण न करले ये मीठी-मीठी बातें, हलचल मचा डालनेवाली दृष्टि ··यह सब मुझे भी पागल, कमजोर न बना डालें ! इसीलिए मैंने बिलकुल अनजान, अजनबी बन जाने के लिये अपना पता बताने में आनाकानी की थी। किन्तु तुम्हारे आग्रह व सफाई देने से लज्जित हो मुझे बताना पड़ा था। पर यह ठीक नहीं हुआ·· आखिर तुमने ही कह दिया, 'तुम्हे शुरू से ही बात नहीं करनी चाहिए थी।'

खैर जो हो रवी, न मैंने बेवफाई की है, न वादाफरोशी। तुम्हें मैंने कभी झूठी तसल्ली नहीं दी, न कोई वादा किया था। यहाँ तक कि तुम्हें गलतफहमी, या कहूं सत्य के असर से बचाये रखने के लिये अपनी कमजोरी के नाजुक-से-नाजुक क्षणों में भी, अपने-आपको संयत-से-संयत रखने की कोशिश की है। आँख मूंदकर अन्दर-ही-अन्दर सब पीड़ा-घुटन पी गई· इसी डर से कि कहीं तुम कुछ विश्वास न कर बैठो, कोई आशा न पाल लो··।

बस, अब और नहीं। कागज अपने लिए ही भरे थे—अपने मन को समझने के लिये। पर अब तुम्हें ही दूंगी। क्योंकि 'अन्तिम मिलन' के बावजूद भी लग रहा है कोई निश्चित रेखा नहीं आई है। 'सीमा' बहुत ही कमजोर है, उस पर

दया करो। भगवान के लिये भूल जाओ कि सीमा कोई थी। तुम्हारे लिए यह कोई कठिन नहीं · प्लीज !

स्नेह-शुभकामनाओ सहित
सीमा

■

रवीन्द्र विमूढ़ आश्चर्य से पत्र पकडे रहा। इतनी मस्त, खुली, फारवर्ड लडकी अन्तर से इतनी गहन हो सकती है, यह विश्वास उसे कतई नहीं हो पा रहा था। पत्र को दुबारा पढा, बार-बार पढा, यहां तक कि एक-एक अक्षर उसके अन्तर में खुद गये, जबान में चिपक गये। 'महज एक परिस्थितिजन्य उत्पन्न चाह है, और प्यार करने की जो आदत होती है न, वह आदत है।...' उफ्, क्या लिखा है लडकी ने ?...साधारण, सहज-सी दिखनेवाली अन्तर में इतने गहरे पैठने की क्षमता रखती है...!

कुछ ही दिन तो हुए कि ट्रेन में से उतरती इस लडकी पर उसकी आंखें ठिठककर ही रह गई थी ..व्याह के घर मे प्रतिदिन मेहमानो को रिसीव करने का काम उसीके जिम्मे था, पर उस दिन तो वह अपनी सारी ड्यूटी भूल ही गया था। गनीमत थी, नन्हा आलोक साथ में था, और उसने झट् से उस लडकी के पीछे उतरती महिला से लिपटकर उसे अपनी जिम्मेदारी याद दिला दी। कितनी खुशी और सन्तोष हुआ था उसे जब पता चला वह लडकी भी व्याह में आये मेहमानो मे से है, दुल्हन यानी अपरा की मौसी की ननद, और अपरा की सखी।

मामा की लडकी अपरा को वह बहुत चाहता है। उसके व्याह की खुशी उसे कम नही थी, लेकिन सीमा के आने के बाद से तो जाने उसकी रग-रग में कहां का उत्साह भर गया था। पूरे दिन दम तोड काम करने के बाद भी थकान का नाम भी याद नही आता · कुछ कर डालने को ·बाहें फडकती ही रहतीं। नारी-मुह पर भगवान कितनी शक्ति भर देता है पुरुषो के लिए।

और फिर जब पहली बार सीमा ने उसे हठात् देखा था आखें उठाकर ·वह विमूढ-सा उन आंखो मे देखता रह गया था . उफ्, कैसा शराबी भाव ! उसीके नशे मे तो वह कितने दिन डूबा रहा था और जालिम लिखती है . !

बोलती वह कम ही थी, पर बोलने मे कही कोई संकोच या अनिच्छा कभी नहीं झलकी। भण्डार की चाबी उसीके सुपुर्द थी, आधी रात को भी उठाकर

खाने को मांगने पर मुस्कुराते हुए शान्ति से उठ जाती। किसी भी काम में मना करने, झिझकने, आनाकानी करने की जैसे उसे आदत ही नहीं थी, हर काम में तैयार। उसके इसी आत्मविश्वास, बेफिक्री पर तो वह फिदा था।

एक दिन मार्केट से आते समय सड़क पर वह उसे अकेली आती मिल गई थी तो साहस कर पास के रेस्टोरेन्ट मे चाय पीने का अनुरोध कर दिया। कितनी ही देर बीत गई, जवाब नही मिला, आखिर जब घर नजदीक आ गया तो फिर उससे पूछे बिना नही रहा गया, 'आपने जवाब नही दिया ? चलिये न, आपको यहां का एक रेस्टोरेन्ट तो दिखा दें।'

हल्के-से हँसकर उसने देखा, 'अच्छा ? लगता है, आपको लड़कियो को प्राय. निमन्त्रित करने की आदत है।'

'नहीं सीमाजी, और भी तो हजारो लड़किया हैं, उनसे तो नहीं कहता। आदत ही होती तो लड़कियों की तो कमी नहीं...'

सीमा कुछ कहना चाहकर भी रुक गई थी, और चुपचाप घर में चली गई, पर उसका अपना मन उस दिन भारी-भारी-सा रहा था।

उस दिन के बाद से वह कुछ खिची-खिची-सी रहने लगी थी। किसी भी काम के लिए बुलवाने पर टाल जाती या दूसरो से करवा देती। हर महफिल में भाग लेनेवाली अब किसी भी महफिल, किसी भी काम मे दिखाई नही पड़ती। कितनी ही बार कई बहानो से वह ऊपर अन्त पुर में चक्कर भी काट आया, किन्तु अन्य लड़कियो की कानाफूसी, व्यंग्यो से घबरा उल्टे पाव लौट आना पड़ता। सीमा के प्रति अपने आकर्षण को उसने स्पष्ट रूप से सब पर जाहिर कर दिया था, व्यग्य और ताने उसे सुखद ही लगते थे, पर सीमा का यह रुख, यह चुप्पी उसे डरा गये...जाने वह इन सबका बुरा मानती हो !

पूरे शहर मे बेफिक्र घूमने, सबकी अगुवा, लीडर लड़की हठात् कमरे में बन्द, नीरव कैसे हो गई ?

आखिर दो दिन दो रात की असहनीय बेचैनी के बाद एक भोर उसने उसे बुलवा भेजा...एकदम सीधा सन्देशा, बिना किसी आड या बहाने के। किन्तु उसका आंचल दरवाजे में झलका कि...बरात आई, बरात आई के शोर के साथ लोग उसे ले गये।

बस, उसके बाद तो वह उसे स्टेशन पर ही देख पाया था। उसका गम्भीर

मुंह, उसकी अवहेलना भरी दृष्टि से वह इस कदर डर गया था कि बात करना छोड उस ओर देखने की भी हिम्मत नही पडी। सहयात्रा की खुशी और आशा सब उसके गम्भीर रुख के नीचे दब-से गए। पूरा डिब्बा रिजर्व था; कुछ मेहमान बीच में उतरनेवाले थे, बाकी सब लखनऊ जानेवाले थे जिनमे स्वय सीमा और सीमा के भाई आदि भी थे। उसके भी उसी ट्रेन से जाने का पता शायद सीमा को गाडी चल देने पर ही लगा था, क्योंकि वह कुछ क्षण उसे विस्फारित नेत्रो से देखती रही थी।

'आप कहाँ जा रहे है ?'

'जहा आप !'

'यानी ?'

'लखनऊ, देवीजी !'

'क्यो ?' उसने भौंहें चढा रखी थी, यह देखकर हँसी आने लगी।

'लखनऊ जाने में मनाही है क्या ?'

'मनाही का क्या मतलब · फिर भी कुछ काम तो होगा ?'

'काम तो कुछ नही, बस कॉलेज व हॉस्टल की रौनक बढानी है।'

'क्या मतलब आप वहा पढते है· कौन-सी में ?'

'आप कौन-सी में ? '

'आपको मतलब ?'

'तो फिर आपको भी मतलब ? · खैर जाने दीजिये · मैं ही बता दूं, आप बी० ए० लास्ट ईयर में है और खाकसार मेडिकल कॉलेज लास्ट ईयर में है। ·· और कुछ · ?'

'और कुछ क्या वैसे आप इतनी जल्दी क्यो आ गये ·अभी दुल्हन तो ससुराल से लौटी भी नहीं ? · '

'आप क्यों इतनी जल्दी आ गई ?'

'आपके लिए !' उसने इतनी जोर से भल्लाकर कहा था कि उसे जोरो से हँसी आ गई।

'सच्च, च् च् च्, तब तो बड़ा भारी नुकसान हुआ ··अभी तो सखी से ससुराल के अनुभव पूछने थे आपको !'

'अपने नुकसान का दु ख मैं स्वय कर लूगी···आप अपनी सोचिये।'

'क्यो सोचू भला···छोटा-सा सफर का साथ है, उसमें भी आप लड़-झगड़ रही है, लगता है मेरे साथ चलने पर आपको बहुत बुरा लग रहा है।'

'मुझे क्यों बुरा लगेगा···ट्रेन मैंने खरीद तो नही ली ? केवल यू ही पूछ लिया था, मुझे क्या मतलब आप जहां जायें, जैसे जायें।'

उसके बाद वह उठकर चली गई। पूरे डिब्बे मे घूमती, गप्प लडाती, हँसती रही। उसके सामनेवाली सीट घण्टों खाली पड़ी रही। आखिर वह जब दरवाजे को खोलकर खडी हो गई तो वह धीरे-से उसके पास पहुच गया।

'सीमाजी, आप मुझसे नाराज हैं ?'

'ना वो, क्यों ?'

'सुनिये, बताता हूँ। मेरी परीक्षाए एकदम निकट हैं, चार दिन की छुट्टियां पड़ी थीं, इसलिए शादी में जल्दी ही चला गया था, पर अब छुट्टी के भी ५-६ दिन बीत गये,···मैं तो कल ही आ रहा था पर सबने कहा,कल पूरा डिब्बा ही रिजर्व हो रहा है···और फिर यह साथ का लालच मुझसे भी नही छोडा गया···।'

'पर आप यह सब सफाई मुझे क्यो दे रहे है ?'

सीमा उसी तरह खड़ी रही। उसका हवा में फरफराता आँचल उसके अंग-अग में छूकर उसे रोमांचित-सा कर रहा था, उसके जिस्म से आती एक मीठी खुशबू जाने कैसी मदहोशी-सी भर रही थी। उसने उसकी बात का कोई जवाब नही दिया·· धीरे-धीरे गुनगुनाने लगा। सीमा चुप खड़ी रही, वह गाता रहा। हठात् सीमा ने मुह घुमाया, 'चलो, तास खेलें !'

वह उसके स्वर, मुंह और आंखो को देखकर स्तब्ध रह गया। कैसा नशीलापन झलक रहा था सब में ! साथ ही कैसी नीरव थकान ! सब तास पर जम गये, पर सीमा उखडी-उखड़ी ही रही, एकदम बेचैन-सी। थोडी देर बाद उसने पत्ते फेंक दिये और कहा, 'रवीन्द्रजी, आप कुछ सुनाइये, कोई गाना !'

कितना बेचैन अनुरोध था ··उससे ना नहीं कहा गया · घण्टो सुनाता रहा। सब झपकी ले-लेकर लुढक गये, पर सीमा की आखो का बेचैन 'और' बढता ही गया। आखिर वह बोला, 'अब सो जाइये सीमाजी, बहुत रात हो गई।'

'हू।' कहकर एकदम गहरी निश्वास ले सीमा उठकर बिस्तरे पर सो गई। वेडिंग खोल बक्स पर बिस्तरे बिछा दिये गये थे। उसका बिस्तर सामनेवाली सीट पर था। बोला, 'आप यहाँ सो जायें सीमाजी, मैं तो देरी से सोऊगा अभी।'

पर जवाब नही मिला। क्या इतनी जल्दी नींद आ गई ? अधेरे में उसका मुँह नही दिख पा रहा था, पर हाथ बढाकर आसानी से छूआ जा सकता था। कितनी नजदीक है उसकी चाहत, उसके·· केवल आज भर के लिए···फिर ·· सोचते-सोचते उसे नींद आ गई। हठात् आधी रात को आंख खुली · सीमा के नजदीक होने का एहसास मानस में फिर से उभर आया, अग-अग पुलक उठा, हाथ बढा सीमा का कोमल हाथ हाथ में ले लिया, होठों से लगाया ·वही परिचित मदहोश महक उसे अपनी ओर खीचने लगी · जाने कैसे उसका मुह झुक कर सीमा के होठो तक चला गया·· जैसे पोर-पोर में शराब ढलक गई। और फिर ऐसी मदहोश नीद आई कि···सुबह सीमा की प्रश्न-भरी कुछ खोजती-सी आखो ने याद दिलाया कि कुछ अनुचित किया है।

लखनऊ ज्यो-ज्यो नजदीक आ रहा था, उसके सपनों का रंग उतरता जा रहा था। आशाए बहुत-सी थी, पर विश्वास कुछ नही था। सीमा उसे मिल तो सकती है, पर क्या सच मे मिलेगी ? सीमा को अकेली पाकर बोला, 'अपना पता दे दीजियेगा, सीमाजी !'

सीमा एकदम चौंकी थी, 'क्यों ?'

'शायद कुछ काम पड जाये।' ··

'कुछ काम नही पडेगा।'

'घबराओ मत, मैं तुम्हारे मकान के सामने चक्कर नहीं काटूगा।··'

'नही, नहीं, ऐसी बात नही···खैर, अच्छा मैं दे दूगी···।'

'वैसे तो मैं भाईसाहब या किसी से भी ले सकता हूँ, पर मैंने सोचा, तुम्हीं से ले लू, वर्ना लखनऊ में घर खोजते ही कितनी देर···!'

'पर आपको करना क्या है ?'

'सीमाजी से मिलना है ।'

'क्यो ?'

'बहुत भोली हो । लगता तो नहीं ऐसा ।'

'अजीब मुसीबत है ! इसमें भोली या चण्ट का क्या मतलब ? याद रखिये, अपना यह मिलना अन्तिम मिलना होगा ।'

'नहीं सीमा, एक बार लखनऊ मे मिलोगी·· वचन दो ! तुमको मिलना ही होगा ।'

'कोई जबर्दस्ती है ?'

'हां, है ।'

'ओहो ! बडे रौब के साथ कह रहे है·· तब तो मैं भी लोहे की लकीर खींच देती हू—नहीं मिलूंगी ।'

'हम मना लेंगे ।'

'इतना सरल नहीं है, बाबूसाहब ! मेरे मन की कठोरता अभी देखी नही है आपने !'

'घबराओ मत , हम भी पक्के हैं ।'

लखनऊ में उतरते समय वह सबसे पीछे था । सीमा की चप्पल नही मिली । उसे बर्थ के नीचे से निकालकर ज्योंही उठी, उसने उसे अपनी ओर खीच लिया । एकदम थकी-सी वह उसके सीने पर पड गई, पर तत्काल हडबड़ाकर डिब्बे से उतर गई ।

उसके बाद वह एक बार घर गया था । सीमा व उसके समस्त घरवालों का व्यवहार अपनत्वपूर्ण रहा । यहां तक कि भाई-भाभी ने तो उनकी जोडी को भी सराह दिया था । कितनी उमग और खुशियो से भरा था वह, पर सबके सामने हँस-हँसकर मजाक करती, मुस्कुराती, चंचल लडकी एकान्त मे कैसी गम्भीर और बेरुखी हो उठी थी !

'मैंने तुम्हारी बात मानी, अब तुम भी वचन दो, यह मिलना अन्तिम होगा ।'

'लेकिन क्यो, सीमा ? तुम नही जानती, मैं तुम्हें···उफ्, नही, यह मुझसे नहीं होगा। अगर तुम्हें इतनी ही आपत्ति थी तो क्यो मुझसे वात की थी, क्यों ऐसी नजरों से देखा था ? तुम्हें वहां ही समझ लेना चाहिये था। क्यो मुझे उलझन में रक्खा ? अब मेरा कुछ मेरे वश मे नही है तुमसे वात किये बिना, तुम्हें देखे विना मुझे कितनी बेचैनी रहती है, मैं ही जानता हू।'

'वह सब थोड़े दिन मे ठीक हो जायेगा, इश्क का भूत तो मिनटो में उतरता है।'

'बको मत! मेरी समझ में नही आ रहा है तुम्हें आपत्ति क्या है ? तुम्हारे भैया-भाभी ने मुझे मजूर कर ही लिया है। क्या तुमने और किसी को·· या सीमा, मैं तुम्हारे लायक नही ?'

'मैं ही किसी के लायक नही,' कहकर सीमा एकदम रूखी होकर उठ गई थी।

उसी दिन का लिखा यह खत आज अचानक डाक से ··? आखिर क्या गुत्थी, क्या उलझन उसके मन मैं है ? बहुत सोचने पर भी उसकी समझ मे नहीं आ रहा था।

शाम गहरा आई थी, रात होने मे अधिक देर नहीं थी, किन्तु रवीन्द्र से किसी तरह रहा नही गया, साईकिल ले सीधा सीमा के यहा पहुच गया। भाभी ने कुछ मजाक किया, और फिर जबरन खाने को टेबल पर बिठा दिया, 'भला होनेवाला जवाई भूखा रहे और हम खाना खा लें! क्यो रवीन्द्र, ननदोई बनना मजूर है कि नहीं ?'

'मेरे लिए तो यह सौभाग्य होगा भाभी, तुम अच्छी तरह जानती हो, पर सीमा को भी मजूर है क्या ?'

'सीमा ने अब तक आये समस्त रिश्तो को स्पष्ट इन्कार कर दिया था.. देखे, बिन-देखे, यह पहले तुम हो जिस पर वह चुप रही है. इस चुप्पी का अर्थ स्वीकृति ही समझते है हम तो।'

रवीन्द्र उलझन में पडा चुपचाप खाता रहा। एकाएक जोरो की वारिश शुरू हो गई। रवीन्द्र हडवडाकर उठ गया, 'अरे, अब मैं कैसे लौटूगा ? किस असमय में आ गया!...छाता होगा, भाभीजी ?'

'पागल हुए हो, इस बारिश में छाता!...क्यों, हमारा घर छोटा तो नही है, शायद इतने मोटे रवीन्द्र वावू के लिए सोने को जगह नहीं जुटेगी.. ।'

'सो वात नही, भाभी!...'

'जाओ जाओ, तुम्हारी प्रेमिका ऊपर रीडिंग-रूम में होगी...हम भी खाना खाकर आ रहे है।'

रवीन्द्र दौडकर ऊपर पहुंच गया। नाईट-गाऊन में सीमा सामने बैठी थी... खुले बाल, हँसती आंखें.. रवीन्द्र को देखकर एकदम सकपका गई, 'तुम!'

'हां, पत्र की पहेली समझने। क्या गजब का पत्र लिखा है वाई गॉड! ..'

'पर तुम...आश्चर्य! खैर, आओ बैठो।'

'आश्चर्य किस बात का, सीमा?'

'यही कि तुम्हें रात-दिन का होश भी नही रहा क्या?'

'जहां जिन्दगी का सवाल होता है वहां रात-दिन का होश किसे रहता है? आज तुम्हें सब स्पष्ट रूप से कहना ही होगा···क्या रुकावट, क्या अड्चन है तुम्हारे मन मे?'

सीमा कुछ देर चुप-गम्भीर बनी रही, फिर बोली, 'सच कहू, तुम मुझे सह नहीं सकोगे, रवीन्द्र! आज जोश में अपना लोगे, पर फिर जीवन भर पछताओगे।'

'अपनी बात कह रही हो क्या? अपने ऊपर विश्वास नहीं है शायद?'

'यही समझ लो।'

उसी समय भैया-भाभी आ गये। कुछ देर बातें होती रही। उसके बाद रवीन्द्र को गेस्ट-रूम में सुलाकर सब अपने-अपने कमरे मे चले गये। एकाएक सोये-सोये सीमा को एक ख्याल आया, दबी-सी एक निश्वास फेंक वह पलग से उठ गई और नाइटी मे ही रवीन्द्र के कमरे में पहुच गयी। एक बार लाईट जलाकर वापिस बन्द कर दी और अन्धेरे में ही रवीन्द्र के पलग पर पहुच गई।

रवीन्द्र ने पलग पर बैठकर उसे बांहो में ले लिया, 'सीमा, सोई नही तुम?'

'आज रात यहीं सोऊ तो कैसा रहे?'

'आज की रात क्यो, तुम मजूरी दे दो, तो जिन्दगी की तमाम रातें एक साथ गुजार सकें।'

सीमा कडुवाहट के साथ हँसने लगी, 'एक रात गुजार लो, फिर तमाम रातो की सोचना।'

'छि सीमा, नहीं, मेरी परीक्षा न लो !'

'परीक्षा तो मैं अपनी देने आई हू, रवी ! अच्छा बताओ, ट्रेन का वह स्वप्न सत्य था या...?'

'सत्य ही था, सीमा !'

'तुम इतना दुःसाहस कैसे कर सके ?' फिर रुककर बोली, 'आज वैसा दुस्साहस नही कर सकते ?'

'सीमा !'

'उस दिन सोयी थी, आज जग रही हू न...इसलिए डर लगता है ? अच्छा लो,' कहकर जाने कितने चुम्बन उसने रवीन्द्र के मुंह पर जड दिये। आवेश, व भावावेशहीन...मशीनी गति के चुम्बन...बाहर धडाधड बरसते पानी की तरह ! सीमा को कमरे में देख व बाहों में पाकर रवीन्द्र को जो मदहोश नशा चढ़ा था, एकदम उतर गया, घबराकर बोला, 'यह क्या सीमा, प्यार कर रही हो या गोली दाग रही हो ? जाओ, सो जाओ !'

'क्यों, असहनीय लग रही हू ? जब एक रात ही नहीं सह पा रहे हो, तो जिन्दगी की इतनी रातें.. कहो, अपना इरादा बदल लोगे न ..?'

'पगली !' रवीन्द्र प्यार से गले लगाकर हंसने लगा। 'इरादा तो तुम्हें बदलना है, मुझे नही। हरदम के लिए मेरी बनोगी न ?'

सीमा बाहों से अलग होकर पलग पर लेट गई, आख बन्दकर बोली, 'तुम्हारे अलावा तो इस जिन्दगी में और किसी की हो नही सकूगी, पर तुम्हारी भी हो सकूंगी यह विश्वास भी मुझे नहीं। रवी, तुम मुझे पाकर कभी सुखी नही हो सकोगे। विश्वास करो, मैं तुम्हारी दुश्मन नही, तुम्हारे भले की ही कह रही हूं। कोई अड़चन नही, सब यही चाहते है, शायद मैं भी तुम्हारी जिद् और सबकी इच्छा के आगे झुक जाऊ...पर तुम - तुम जीवन भर पछताओगे, रवी !.... देखो, लडकियों की कमी नही है, भावना में मत बहो...!'

'तुम आखिर चाहती क्या हो ?'

'तुम्हारा जीवन बर्बाद होने से बचाना चाहती हू, रवी !'

'मुझ पर इतना उपकार करने की जरूरत नही है, सीमाजी ! आप अपनी सोचिये ..!'

'नाराज हो गये हो, पागल ! बिल्कुल बच्चे हो !' सीमा ने उसे पास खींच कर फिर चूम लिया। 'अच्छा, शादी कब करोगे ?'

'सच !' रवीन्द्र ने जोश के साथ सीमा को बांहों में भींच लिया। 'परीक्षा के तुरन्त बाद !'

सीमा का कलेजा बैठ गया, 'इतनी जल्दी !'

'जल्दी ? मेरा वश चले तो अभी कर लूं ! क्या पता, कल तक तुम फिर पलट जाओ !'

सीमा कुछ कहती उसके पहले ही उसने उसके होठों पर अपने होंठ रख दिये। सीमा के शरीर की महक, होठों के गुलाब, स्वीकृति का नशा रवीन्द्र की रग-रग में, खून के कतरे-कतरे में शराब बनकर बहने लगा।

कामदेव के एक सुरभित, सुन्दर, कोमल, नशीले फूल-सी सीमा की देह अपनी सम्पूर्ण प्रकृति (देन) से वातावरण को मदहोश बना रही थी। उत्तप्त, पागल-सा रवीन बेहोश-सा हो उठा -डूबते स्वर में बोला, 'मेरा कुछ अपने वश में नहीं है, सीमू !'

सीमा उदास-सी हँस दी। 'आज की अपनी रात मैंने अपनी ओर से तुम्हें सौंपी है, रवीन ! फिर तो मेरा इन पर अधिकार रह ही नहीं जायेगा, तमाम रातें तुम्हारी हो जायेंगी। मैंने सोचा, शायद मेरी यह एक रात की कुर्बानी तुम्हारी पूरी जिन्दगी, सम्पूर्ण रातों को बर्बाद होने से बचा ले !'

रवीन्द्र ने खुमार-भरे अनगिनत चुम्बन उसके मुह पर जड दिये। 'पगली ! मैं ही तुम्हारा हो जाऊंगा, हो चुका हू, फिर ···।'

'पर तुम इतनी ठण्डी क्यों हो, सीमू ?'

सीमा की आंखें भर आईं। गहरी निश्वास ले वह फीकी-सी हँसी हँस दी। बोली नहीं।

रवीन्द्र ने आवेश से भरकर उसके बदन को झकझोर डाला। 'तुम्हें क्या हो गया है ? तुम·· तुम ··औरत हो या···उफ् !' व्याकुल भाव से रवीन्द्र सर पकड़ कर बैठ गया।

सीमा ने आंसू पोंछ अपना शरीर उसकी गोद में डाल दिया। 'नाराज मत होओ, रवी, अपने-आपको तुम्हें सौंप दिया है न !'

मैं पशु नही हू, सीमा,…आखिर तुम…तुम्हारे इस कलेजे में कही दिल भी है या नहीं ? किस पत्थर की बनी हो तुम ? बताओ, यह ठण्डेपन की एक्टिंग कर रही हो या…?'

असह्य वेदना के साथ सीमा हँस पड़ी, 'क्यो ? सहा नही जा रहा है न ?'

'नही, इस समय तो एकदम असह्य है।'

'जिन्दगी भर यह सब सहन कर पाओगे, रवीन ? यह एक्टिंग नही, यही मेरी सच्चाई है। जवान खाल में बूढा मन, बूढा तन ! मेरे में कही जरा भी उत्ताप, जरा भी जीवन नही है, तुम लाश को लेकर कभी सुखी नहीं हो पाओगे।'…

'क्या कहती हो, सीमा ?' रवीन्द्र का तेजी से धड़कता दिल बैठने लगा। हताश भाव से उसने सीमा के ठण्डे, निस्तब्ध सीने पर सर पटक दिया। उत्तप्त ज्वार आँसू बनकर बहने लगा। डूबते स्वर में वह बोला, 'मुझसे छुटकारा पाने के लिए बहाना तो नही कर रही हो ?'

सीमा की छाती मे शूल बिंध गया। 'छि रवीन, तुमसे छुटकारा पाने के लिए बहाना..! आज तक कितनों को मैंने निराश किया है, कितने रिश्तो को ठुकराया है ! इतनी डांट, व्यग्य, तानो के बीच भी मन डगमगाया नहीं। किन्तु यह पहली बार तुम्हें 'ना' कह पाने की शक्ति नही जुटा पा रही हू।'

'तो इसके लिए यह नाटक रचा है !…'

'छि, रवी, समझने की कोशिश करो। यह नाटक नही, सच ही मैंने आज की रात तुम्हें सौंपी है। इस देह के प्रति तुम्हारा जो कुछ भी आकर्षण है, इस सहज उपलब्धि के बाद मिट जायेगा, और पूरी जिन्दगी एक बोझ से बच जाओगे। आज की रात के बाद तो तुम मुझसे घृणा करने लगोगे !….'

'इससे तुम्हें सुख होगा, सीमा ?'

'जीवन भर तुम्हें अतृप्त प्यास से छटपटाते देखने से बेहतर ही होगा, रवी ! मैं सचमुच एक जिन्दा लाश हूं। भावना, आवेग, रोमाच, खुमारी—नाम सुना है इनका, पर कभी एक क्षण के लिए भी महसूस नही किया ये क्या होते है। आज इतनी उत्तेजना के बीच भी तन-मन सब बर्फ-से ठण्डे पडे है मैं क्या करू, मुझे माफ कर दो, रवी !'

सीमा का गला अवरुद्ध हो गया। रवी का सर सीने में जोर से भींच बालों को सहलाने लगी।

थोड़ी देर की गहन निस्तब्धता के बाद रवीन्द्र ने गहरी निश्वास ली, 'बाहर से तुम कितनी अल्हड, मस्त, चंचल दिखती हो सीमा...शराब छलकाती-सी... और अन्दर इतनी...न जाने किन कठोर हाथों ने तुम्हारा निर्माण किया है !... खैर छोड़ो, चलो, तुम्हें सुला आऊं।' कहकर रवीन्द्र ने उसे दोनो बांहों में उठा उसके कमरे में पलग पर ले जाकर सुला दिया। सीमा आखें बन्द किये जड-सी पडी रही। कब नींद आ गई, पता नहीं। सुबह उसके उठने के पहले रवीन्द्र जा चुका था।

पाच-छ दिन बीत जाने पर भी रवीन्द्र के दर्शन नही हुए, कोई खबर तक नहीं मिली, तो सीमा व्यग्य और पीडा से मुस्कुरा दी। उसने तो शादी न करने का स्थिर इरादा किया ही हुआ था...रवीन्द्र ने कुछ दिन जिन्दगी मे आकर जो खलबली मचा दी थी वह अब स्वत शान्त हो गई। खुशी की ही तो बात है, पर सदेव के शान्त, स्थिर मन में यह टीस-सी क्यों ? क्यों तृषित-सी आंखें किसी की राह जोहती रहती हैं ? क्यों विश्वास नहीं आता कि—'शरीर का महत्व अधिक है, प्यार का नहीं ; वासना बड़ी चीज है, स्निग्ध प्यार नही !'

'सीमा, तेरा खत है।'

अनमने भाव से उठकर सीमा खत ले आई। अक्षरो को देखकर चौंक उठी, ये तो···दिल जोरों से धड़कने लगा···क्या लिखा होगा। लिफाफे को खोला—

'सीमू,

बहुत सोचा है, वह स्थिति सचमुच असह्य है, पर तुम्हारे बिना जीना उससे भी अधिक असह्य है, यह समझ गया हू।

सोचता हूं, आग जलाने के लिए मिट्टी का चूल्हा ही क्या सबसे उपयुक्त नहीं होता, जिसमें कुछ निर्माण होता है ; फूस-फास या तीव्र हवा तो विनाश का ही रूप खडा करते हैं। तुम्हारे शीतल-स्निग्ध सान्निध्य में मैं जिन्दगी में न जाने कितनी अमूल्य निधियों का निर्माण कर पाऊगा। किसी दहकती आग से मिलने पर (उसमें एकाकार होने के बावजूद भी) उससे केवल विनाश ही होगा, या केवल प्रभावहीन चिनगारियां पैदा होंगी। बिजली के करेंट के बुरे

परिणामों से बचने के लिये एकमात्र काठ ही उपयुक्त चीज है, कल-कल बहता पानी नहीं।

मैं पुरुष हूं सीमा, स्वार्थ नहीं छोड़ पाऊंगा। तुम जो सेवाव्रत धारण करने को तैयार बैठी हो, उसकी ऊंचाई से तुम्हें खीचने का स्वार्थ···मुझे माफ करना मेरी देवी, मेरी आराधना ···मुझे जीवन का वरदान तुम्हें देना ही होगा। उस रात के पहले तक रवीन तुम्हारे रूप का पागल था, पर अब तो···भटकता पथिक किसी आश्रय के लिये तड़पता है···तुम्हारी कसम, सीमा, मेरा रोम-रोम तुम्हारे लिए उसी तरह व्याकुल है। रूप की प्यास बुझाने के उपाय थे, पर इस व्याकुलता का अन्त मौत ही है। इतनी निष्ठुर नहीं बनोगी न ?

—रवीन्द्र'

सीमा स्तब्ध पाषाण-मूर्ति-सी बैठी रही। हठात् भाभी तूफानी गति से आकर पास मे खड़ी हो गई। 'रवीन्द्र का खत आया है तेरे भैया के नाम! चल, तेरे भैया बुला रहे हैं!'

सीमा हिली नही, वह विषाद-भरी शान्त नजरों से भाभी को देखती रही, 'क्यों भाभी ?'

'जैसे तुझे मालूम ही नहीं!···अरी, हमारी सीमा को हमसे छीनना चाहते हैं··· सीमा की क्या राय है, यही पूछना है ?'

सीमा ने एक ठण्डी निस्वास ली। पलकें झुकाकर उसने होठों में ही बुदबुदाते हुए कहा, 'नहीं भाभी, अभी मेरा मन ठीक नहीं है!···'

और सीमा की पलकों से झर-झर आंसू बहने लगे!



सूखी धरती

अशोककुमार माथुर

लाश जल गई थी। सूखी लकड़ियो में धुआं भी कम ही निकला। आखिर में जब केवल सफेद राख रह गई तो पुरोहित ने शरीर के भस्म हो चुकने की घोषणा कर दी। सबको मानो इसीका इन्तजार था। लकडियां धधकने लगी थी और रेगिस्तान की गर्मी उससे मानो प्रतिद्वन्द्विता करके अपना प्रभाव दिखाने को उत्सुक हो रही थी।

दूर तक, निगाहो की सीमा से आगे तक, चारो ओर रेत का साम्राज्य था। ऊपर स्वच्छन्द निर्विघ्न नीला आकाश भूरे वातावरण में सीप के ढक्कन-सा उठा था, और आकाश की स्वच्छन्दता से ही मानो वातावरण शापित लगता था। सीप का जन्तू कभी हिलता तो रेतीले समुद्र में कुछ हलचल होती, फिर वही निर्जीवता, अनोखी शान्ति। धूल मे पगचिह्न वनते-विगडते और समुद्री जहाज, ऊटों के काफिले, ऐसे चुपचाप निकल जाते मानो उनकी आहट से कोई शेर जग जाएगा।

सुबह पांच बजे का बिगुल बजता तो समुद्र में हलचल होती, मानो कोई गणदेवता ने अगडाई ली हो। दूसरे बिगुल पर वह हलचल तूफान मे बदल जाती।

'हाजरी के दफ्तर' पर सात बजे से ही भीड लग जाती हालांकि समय आठ बजे का था। साढे आठ बजे जैन्टलमैन बाबू उठकर हाथ-मुह धोते। इतने में आठ बज जाते। चपरासी पर्चियां बांटता और हवा में अजीब-सा मनुष्य-युद्ध होता तो हाजरी बाबू कहते, 'जानवरो की तरह क्यो झपटते हो तुम लोग ? रेगिस्तानी ऊटो में एक ऊट तुम भी हो।' कभी-कभार कोई पढा-लिखा मजदूर बोल उठता, 'आपके ऊट को तो सरकार से चारा मिल जाता है हाजरी बाबू, पर (अपने पेट की ओर इशारा करके) इस ऊट का क्या करें।' .. कुछ ही देर में जुलूस नहर की ओर चल देता तो हाजरी बाबू मुकन्दलाल के मुह से आह निकलती, 'हे ईश्वर, यह क्या हो रहा है !'

टेम्परेरी श्मशान की धरती मे जब लाश जल गई तो पडित ने सब पर सोने का छुआ पानी छिडका और सब लौट चले। पसीने से सब तर थे। मन पर छाया बोझ उतर गया। नौजवान छोरे गुनगुनाने लगे तो एक वृद्ध ने उन्हें टोका।

'...थोडी भाजी और दे मां !...'

मा की सूनी आंखो ने बच्चे को निहारा और पानी से उबली दाल जिसमे चिकनाई नाम को भी नही थी, बच्चे की थाली मे डाल दी और खुद मोटी बेजड की रोटी को नमक से लगाकर खाने का प्रयत्न करने लगी। पास ही के टेन्ट में एक पिता अपने पुत्र से कह रहा था, 'कल आपन बच्चू को गुड खिलाएगे।'

नियति हंसी तो आकाश में तारे निकल आए। चाद धीरे-धीरे ऊपर आने लगा तो भी रात का भय घटा नहीं। पवित्र रात की कालिमा भयभीत हो उठी कि इस गरीबी, सच्चाई और मेहनत से ये अकाल-पीडित कही मुझे न डस लें !

रात को सब जल्दी सो गए क्योंकि सुबह काम पर जाना था। मृतक की पत्नी सिसकती रही। उसे तीन दिन तक मुफ्त भोजन मिलने का प्रावधान था, अन्यथा ..।

सरकारी तम्बू के गुलदान में कागज के फूल लगे थे। हाजरी बाबू ने शतरंज की चाल चलते हुए अपने बॉस से, यानि कैम्प-इन्चार्ज से पूछा, 'मैं यही मर गया तो फूल तो चढाएंगे न ?...' और बॉस ने हँसते हुए कहा, 'क्यो नही, गुलदान के गुलाब कब काम आएंगे !'

...दोनो देर तक हँसते रहे। इनकी हँसी नत्थू और केसर ने भी सुनी जो कुछ ही दूर, एक पत्थर का सहारा लिए बीडी फूंक रहे थे। बांस को दो में तोड़कर उनमें बोरियां चढा दी गई थी जिससे कि लेटे जाने पर पर्दा हो जाता था। बैठने पर पड़ोसी के यहां क्या हो रहा है, यह देखना सरल था।

केसर ने कहा, 'इस धरती के लिए क्या नही किया, और यही धरती इतना दुख दे रही है···कैसी मां है यह !' हवा तेज चल रही थी, इससे बोरी के पर्दे हिलने लगे। रेगिस्तानी मिट्टी उन पर बिखर गई और उसकी नमी से सर्दी अधिक लगने लगी।

केसर एक लिहाफ ले आया जिसमें पैवन्द-ही-पैवन्द थे। दोनो ने मिलकर वह ओढ ली और बाट-बांटकर बीड़ी पीने लगे। नत्थू कुछ सोचने लगा, फिर अचानक बोला, 'यह कैसी जिन्दगी है, केसर ? दिन-रात पेट की चिन्ता रहती है। मेरे बाबा को भी यही चिन्ता थी। शायद मेरे बच्चो को भी यही चिन्ता रहेगी !...कौन जाने ?'

केसर ने कहा, 'कहते हैं न राजा मरे या जीवे, प्रजा को तो काम में जुतना ही है, वही बात है, नत्थू ! बीस साल पहले भी यही हाल था···बीस साल बाद भी यही होगा।' ऐसे समय वह दार्शनिक बनकर वर्तमान से इतना विलग हो जाता मानो उसका सिर्फ शब्दो का ही सम्बन्ध हो।

नत्थू सिहर गया। केसर के शब्दो की सच्चाई को अपने क्रोध से काटने के प्रयत्न में उसका चेहरा विकृत हो गया। उसने एक बीडी और सुलगाई और बोला, 'ऐसा नही होगा नत्थू, कभी भी नही होगा। हम भूखे सही, पर हमारी मेहनत, गरीबी और सच्चाई कभी-न-कभी अवश्य ही ऊपरवाला देखेगा। देखना केसर, एक दिन हमारी जय होगी और ऊची जगहो में रहनेवालों को एक दिन पीछे देखना ही पड़ेगा। जो काम करेगा, उसे रोटी मिलेगी।' ··

देर तक दोनों भविष्य की कल्पना में खोये रहे। अचानक ही केसर को एक गीत याद आ गया और वह उसे गुनगुनाने लगा जिसका भावार्थ था · 'प्रिये, मैं सदा

ही तुम्हें तरसाता नही रहूगा। मेरे खेत सदा ही सूखे नही रहेंगे। देखना, इस वर्ष वर्षा अवश्य होगी और इस बजर जमीन पर हरियाली छा जायगी। हमारे झोपडे नव अन्न से भर जायेंगे तब मैं घोडे पर बैठकर तुम्हें ब्याहने आऊगा।...'

पास के ही भाग में सोया एक बूढा तभी बोल उठा, 'कितने साल से यह गीत गा रहे हो केसर, पर कभी ऐसा हुआ है कि यह गीत सच होता लगे... ?अभी तो जल्दी सो जाओ मेरे भाई, कल सुबह फिर नहर पर काम करने जाना है।'

और वे दोनो एक-दूसरे को अपराधी नजरो से देखते हुए चुप रह गये। शायद उनका मनुष्य खो गया था, या मनुष्य तो था, उनका साहस खो गया था उस वीरान रेगिस्तान की भूख के आगे! और उन दोनो को ऐसा लगा मानो रेगिस्तानी समुद्र में ज्वार आ रहा हो जो उन पापियो को अपने साथ बहा ले जाएगा।

वे निर्विवाक शून्य को निहारने लगे।



मुर्दा हँसी

हरमन चौहान



मनेश ठीक छ बजे जगा। इसलिए हड़बड़ाता स्टेशन भागने की तैयारी में लग गया। उसे ठीक साढे छ बजे टिकिट-बारी पर टिकिट बाटने है। निवृत्त होने मे उसे दस मिनट लग गए और अभी वह आईने के सामने बालों को सवार ही रहा है—न जाने आईने में उसे अपने चेहरे की कौन-सी खूबिया दिख रही हैं, उसे कुछ याद आ रहा है, कुछ अनुभूतियां ताजा हो रही हैं। शायद रात की खटपट से परेशान होकर वह कुछ सोच रहा है। बुढिया नौकरानी इस बीच उसके सामने एक कप चाय का रख देती है। आधे मिनट में चाय को सुड़ककर बाहर निकलते हुए मुड़कर वह बुढ़िया को सुबह के खाने के लिए मना कर देता है। बुढिया उसकी रात की परेशानी से परिचित थी, और फिर उसका सगमरमर के पत्थर-सा तरासा हुआ उदासीन मुख भी तो बता रहा था कि रात नींद ने उसकी आंखों से समझौता किया ही नहीं। उसकी मुर्दा हँसी छिप भी तो नहीं सकती थी।

वह इस अजनबी शहर मे उसके साथ मेल बिठाये रखने का जी तोड़कर प्रयत्न कर रहा था, यह उसके लिए कोई नई बात न थी। उसकी बात वह मानती ही नही थी। बेचारा हार गया था, पर हारकर भी उसे अपना बनाये रखना चाहता था। उसे अपने दिल से अलग नही करना चाहता था और एक वह थी कि झट उससे अलग हो गई—उसके शीशाए-दिल को तोड़ दिया तो फिर क्यों नहीं उसकी हँसी मुर्दा बने ?

रात उसे नीद नही आई। ठोढी पर हाथ धरे सोचते-सोचते ढलते पहर झपकी लगी थी। आंख खुली तो छः बज चुके थे सुबह के। उसे ड्यूटी पर जाना था, वह भागते-भागते भी दस मिनट लेट हो ही गया। बाबू बारी मे ऊघ रहा था। खिड़की के बाहर दो आदमी टिकिट के लिए जल्दी कर रहे थे, 'बाबूजी, गाड़ी जानेवाली है !'

मनेश के कानो मे 'गाडी' शब्द गूंजा, 'मैं सुबहवाली गाडी से चली जाऊंगी।' ...तो अभी इस गाड़ी से जाएगी ? किसी हालत में नही रुकेगी ? रात जगने की उसकी परेशानी भी यही थी। बडी देर तक उसने जिनिया को समझाया था, पर उसने हट नहीं छोडी। वह हार गया था जुए में, इसीलिए उसका झगडा हुआ था। हर महीने की दो तारीख को पूरी तनखाह हार जाता था और जिनिया उसका मुह देखे बिना चुप रहा करती थी।

ऊघते हुए बाबू के पास जब उसे बाहर के मुसाफिरों ने देखा तो एक ने कहा, 'बाबूजी ! जल्दी से एक टिकिट दिल्ली का . ।'

मनेश ने उसे देखा और बडे आश्चर्य से कहा, 'दिल्ली ?'

'हां, दिल्ली।' मुसाफिर ने जवाब दिया।

बीच मे ऊंघनेवाला बाबू जाग गया, 'क्यू चिल्लाता है ?' पीछे मनेश को खड़ा देख बोला, 'ओह, मनेश ! तुम आ गये ? लो यह रजिस्टर साईन करो और चार्ज लो, मैं जाता हू।'

मनेश ने हस्ताक्षर किये और चार्ज लेकर उसे छुट्टी दी। कुर्सी पर भारी मन से बैठते हुए कुछ सोच ही रहा था कि फिर आवाज आई, 'बाबूजी ! जरा जल्दी एक टिकिट दिल्ली का।'

'दिल्ली !' फिर उसके कानों में गूजा।

मनेश कुछ कहे उसके पहले ही टिकिट के लिये एक हाथ भीतर लम्बा हो आया था। उसके हृदय में जैसे 'दिल्ली' शब्द चुभ रहा हो। उसने चुपचाप एक टिकिट दिल्ली का दे दिया। भीड नहीं थी, इक्के-दुक्के मुसाफिर टपक रहे थे। मनेश से फिर एक मुसाफिर ने जयपुर के दो टिकिट मांगे। उसने टिकिट दे दिये, साथ में रुपये भी वापस दे दिए। जाते-जाते मुसाफिर कह गया, 'एबसेन्ट माईन्डेड !'

मनेश देखता ही रह गया। फिर तीसरी आवाज आई, 'एक टिकिट !' मनेश ने पैसे लेते हुए कहा, 'कहा का ?' उत्तर मिला, 'दिल्ली का।'

'दिल्ली !' दिल्ली शब्द फिर कानों मे गूंजा और उसके हाथ से रेजगारी नीचे गिर गई। हाथ कांपते देख मुसाफिर ने कहा, 'क्या तबियत खराब है, बाबूजी ?'

मनेश ने कुछ कहे बिना ही उसके हाथ में एक टिकिट थमा दिया। मुसाफिर जाते-जाते मुड़कर कहने लगा, 'बाबूजी ! मैं अहमदाबाद नहीं जाना चाहता।'

'क्या ?' मनेश सूखी नजर फेंकता बोला।

'जी हां ! मुझे टिकिट अहमदाबाद का नही, दिल्ली का चाहिए।'

'दिल्ली ?' मनेश फिर कांपा।

'जनाब, दिल्ली ! दिल्ली !! अहमदाबाद नहीं।'

और मनेश ने कांपते हाथो से सही टिकिट दे दिया।

पता नहीं आज मनेश को जिनिया की सूरत हर टिकिट पर गढी-सी दिख रही थी। उसने कई बार मना किया था, पर वह नहीं मानी। जिनिया के चित्र-संस्मरण उभर रहे थे। उसके साथ किये हुए वादे को तोड़कर वह जिनिया के सपने भी तोड रहा था। जिनिया ने उसे तन दिया था, मन दिया था, पर बदले में उसे धन कभी नही दिया गया। वह क्या करती ? कैसे घर का खर्च चलाती ? पिछले सात माह से वह मैके से बराबर पैसे मगाती आ रही थी। एक दिन अचानक जाने क्या हुआ कि जिनिया उससे नाराज हो गई। बात सभाले नहीं संभल सकी, बिगड कर ही रही। आखिर कब तक ऐसे चलता ? उसने निर्णय किया, वह उसके इस शहर को ही छोडकर दिल्ली लौट जाएगी, जहां उसकी मां, उसका पिता उसकी प्रतीक्षा किया करते है।

मनेश उसकी बात पर क्यो नही गौर करता ? क्यों नही वह अपना जुआ छोड़

देने का वादा पूरा करता ? इसके पीछे मनोवैज्ञानिक कारण है। जिनिया ने भी उससे एक वादा कर रखा था और वह वादा वादा ही रहा। एक वादा जिनिया ने किया था और उसी ने तोड़ भी दिया। उसकी झील-सी नीली आंखों में वह रोज झांका करता था·· कभी तो वह हां भरेगी। और ऐसे ही उसके प्रेम-सागर में वह गोता लगाता रहा, पर कहीं कुछ उसके हाथ न लगा। वह नीली झील-सी आंखों से प्यार का एक मोती न पा सका और इसीके परिणामस्वरूप वह साथियो में ताश खेलते-खेलते जुआ सीख गया।

जिनिया ने उसे कल रात ठुकरा दिया था क्योकि उसने अपना वादा पूरा नही किया। रात जब मनेश ने विवाह का प्रस्ताव रखा—जिसकी प्रतिक्रिया क्या हुई—उसे अब :अनुभव हो रहा था। वह जिनिया के पीछे मित्र, परिवार, समाज, सबको छोड़कर इस अजनबी शहर में उसके साथ चला आया था। आश्रय जिनिया ने मागा था, उसने नही। इसी उधेड़बुन के झंझट मे वह 'जिनिया' और 'मैं', 'मैं' और 'जिनिया' करता रहा।

इतने में मनेश को ट्रेन की सीटी सुनाई दी। उसका हृदय कांप रहा था, 'आज यह गाड़ी जल्दी क्यों नहीं जाती ? इसे क्या हो गया है ? समय हो गया तो भी रवाना नही हो रही है ? बात क्या है···क्यो नही जा रही है ?' बारी पर टिकिट देने जरूरी थे, इसलिए पता कैसे लगता कि गाड़ी रवाना क्यो नहीं हो रही है। ट्रेन ने फिर दोबारा सीटी दी और वह झुंझलाया, 'कम्बख्त जाती नही, अभी तक यही खड़ी हुई है ?'

'टिकट लेकर ··पैसे नहीं। एक टिकिट दिल्ली का।' इतने मे एक पहचानी-सी आवाज उसके कान में पड़ी। मनेश ने मुड़कर देखा, चूड़ियों से खनखनाता एक हाथ उस तक बढा। उसे विस्मय हुआ—कही यह लेडीज हाथ जिनिया का तो नहीं है ? उसका हृदय धड़कने लगा। नजरें घुमाते ही उसने देखा, ठड से कांपता हुआ एक चेहरा। वह भी कांप उठा—इस कड़ाके की सर्दी में जैसे उसे गर्मी लग रही है, उसे धूजन छूट रही है। उसकी और मनेश की कपन में अन्तर था। जिनिया को ठडे लग रही थी और मनेश को गर्मी से पसीना-पसीना होकर थरथराहट-सी कपकपी। मनेश ने देखा, जिनिया सामने खड़ी है। उसे विश्वास नही हुआ, इतनी जल्दी स्टेशन कैसे पहुच गई ? वह तो उसे सोते हुए छोड़कर आया था और उसे विश्वास था, वह समय से पहुच ही नहीं सकेगी और बारह घटे के अवकाश में तो वह उसे मना लेगा, पर यह दृश्य देख उसका सर घूम गया।

जिनिया ने टिकिट मांगा, 'एक टिकिट दिल्ली का।'

मनेश जैसे अंधेरे में कुछ टटोलता हो, वह अपना हाथ पैसों के लिए हवा में घुमाता रहा, पर हाथ नहीं दिख रहा था। जिनिया ने पन्द्रह रुपये हाथ में थमा दिए। धुधले आवरण में उसे टिकिट ठीक से नही दिख रहे थे...।

इतने में ट्रेन ने तीसरी सीटी दी प्रस्थान होने की।

वह कांपे जा रहा था, कांपे जा रहा था, पर उसकी ड्यूटी थी टिकिट देने की। उसे टिकिट देना था। उसने जिनिया के हाथ में उसी धुधलके में एक टिकिट थमा दिया। वह टिकिट लेकर दौड़ी गाडी पकडने को, पर गाडी तब तक आधी से ज्यादा आगे निकल गई थी। लेकिन जिनिया को जाने की जिद् थी, वह जैसे-तैसे चढ गई अपने को सम्भालते हुए। एक चैन की सांस लिए इस अलबेले शहर से दूर जा रही थी, एक घायल फडफड़ाते हुए मनेश जैसे पंछी को छोड़कर।

मनेश होश में न रहा, उसने अपनी हार रात को भी मानी थी और अभी भी मानी थी, वह सचमुच हार चुका था। उसकी हंसी का जैसे किसी ने गला घोट दिया हो, वह मर गई, अब जैसे उसकी मौत इस उदास चेहरे को मुर्दा बना गई हो, जैसे अब वह भी मुर्दा बननेवाला हो, जैसे जिनिया की कोई सौत उससे प्रेम कर रही हो। सचमुच, अब तो वह मुर्दा बन जायगा।

गाडी जाने के दस मिनट बाद ही एक पोइन्टमैन ने उसे खबर दी, 'गाडी के नीचे कोई कट गया है, गाड़ी सिगनल के पास में खड़ी है।'

मनेश को किसी ने झकझोरा और उसके कानो में कुछ सुनाई पडा, 'बाबूजी! गाडी के नीचे कोई कट कर मर गया है, अभी-अभी दिल्ली जानेवाली गाड़ी से।'

मनेश में जैसे बिजली का करेंन्ट दौडा, जाने कहा से जान आ गई, 'क्या? मर गया है कोई? नही! नहीं!! नहीं!!! ओह! जिनिया यह तूने क्या किया?' कहता हुआ भागा। लोग सिगनल की ओर भाग रहे थे, वह भी उधर ही भागा। पहुचने पर पता चला कोई बुढ़िया कट गई है। उसे कुछ चैन आया। आसमान का बोझ सर से हलका हुआ और धरती उसके कदमो में रुकी-सी खडी थी। फटता हुआ उसका कलेजा रुक गया। ओफ! मेरा दम ही निकल जाता, जिनिया...जो यह तुम होती तो मैं जिन्दा ही न रहता...

शुक्र है।' और मनेश डिब्बे से बाहर झांकती हुई मूर्तियों में से एक-एक को बारीकी से देख रहा था—कहीं उसे उसकी जिनिया मिल जाए, बस एक नजर भर!

बुढिया का शरीर मांस के लोथडों में अलग-अलग बिखरा पडा था। उसका सर पटरी के बीच जिनिया के डिब्बे के ठीक नीचे पडा था। लोगों की भीड जमा हो रही थी। बुढिया के दु:ख का लोग अनुमान नहीं लगा पा रहे थे। 'बेचारी · बहुत दु:खियारी होगी! शायद·· क्यों?'

भीड को चीरते हुए जब मनेश ने उस बुढिया का आधा पीछे का कटा हुआ सर और खून से लथपथ चेहरा देखा तो उसे लगा, यह चेहरा जाना-पहचाना है ·· और वह चेहरा उसकी बुढिया नौकरानी का है।

बुढिया मनेश के दु:ख को समझती थी, इसलिये भागती-भागती जिनिया के पीछे आ पहुची थी और स्टेशन पर उसको रोकने के लिए वह दरवाजे पर ही जिनिया की साडी पकडकर लटक गई। पर जिनिया थी कि उसने उसकी एक नही सुनी और सिगनल तक आते-आते वह गाडी के बिल्कुल नीचे लटकती कट गई। गाडी जिनिया ने ही जजीर खीच कर रोकी थी।

मनेश वही सर पटक-पटककर रोने लगा। ऊपर डिब्बे से झांकते हुए चेहरों में एक चेहरा जिनिया का भी था, जिसकी आंखें गीली थी और होठ कांप रहे थे, वह थरथरा रही थी, काप रही थी, लेकिन इस बार ठड से नही, पसीने से तरबतर होकर धूज रही थी ··और धूजन मनेश के जैसी ही थी।

गाडी आधे घटे बाद चली गई, लेकिन इस बार जिनिया को नहीं ले गयी। वह नीचे उतरकर मनेश की पीठ हौले-हौले पीछे खडी होकर थपथपा रही थी। मनेश को इस अजनबी शहर में अब तक नजदीकी कोई दिखा नहीं था, फिर यहां यह कौन उसे अपना समझ पीठ थपथपा रहा है? गीली आंखों से मुडकर देखा तो उसे जिनिया दिखी।

मनेश ने कहा, 'तुम गई नहीं?'

'कैसे जाती? तुमने मुझे प्लेटफार्म जो थमा दिया था···क्यों?'

'प्लेटफार्म?' और मनेश ने 'ओह गॉड!' कहते हुए जिनिया को अपने बाहुपाश मे बांध लिया। बुढ़िया के चेहरे की मुर्दा हँसी मानो अब भी मुस्कराती हुई उन्हें आशीर्वाद दे रही थी—दो बिछडे हुओं को मिलाने के लिये! ■

ढोला-मारू

पुष्पा देवड़ा

■

कथा मारू के जन्म की

मरुधर देश का पुंगल नामक नगर सारे देशो में प्रसिद्ध था। उसके राजा का नाम पिंगराज या पिंगल था। वह रूप का भण्डार और शौर्य का आगार था। बारह वर्ष की छोटी आयु में वह राजगद्दी पर बैठा था, और तीन वर्ष में ही उसने अपने सब दुश्मनो को हराकर चारों ओर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। पन्द्रह वर्ष की आयु में उसका व्याह जालौर नगर के पराक्रमी राजा सावतसी देवडा की परम रूपवती कन्या उमादे के साथ हुआ।

समय पाकर उमादे ने एक पुत्री को जन्म दिया जिसका नाम मारवणि रखा गया। मारवणि मानो साक्षात् लक्ष्मी का अवतार थी। राजा-रानी को बहुत उछाह हुआ और वे लाड से उसे मारू कहकर पुकारते। एक साल मारवाड मे वरखा बिल्कुल नही हुई, पुंगल नगर मे जल का बेहद कष्ट हो गया तो उमादे ने पिंगल राजा से कुछ दिनो के लिए पुष्करजी के किनारे जाकर रहने का अनुरोध किया। राजा तत्काल राजी हो गया। उसने राज्य का भार अपने भाई गोपालदास को सौंपा और अपने साथ बहुत-सी फौज-पल्टन लेकर यात्रा पर चल पड़ा।

राजा पिंगल अपने लाव-लश्कर सहित पुष्करजी आये। वहां की जमीन हरी-हरी घास से ढंकी थी और वहां स्वच्छ मीठे जल की बहुतायत थी। वह घास खाकर और पानी पीकर राजा की गाय-भैंसो का दूध न केवल मात्रा में बढ़ गया, न-न स्वाद में भी बहुत मीठा हो गया। राजा ने वहीं डेरे डाल दिये और अपनी प्रजा और फौज सहित बहुत सुख से वहां रहने लगा।

यह बात तो मारवणि के जन्म की हुई। अब साल्ह कुंवर के जन्म की कथा कहें।

कथा साल्ह कुंवर (ढोला) के जन्म की

नलवरगढ में नल नामक राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम दमयन्ती था। दोनो बहुत सुखी थे, लेकिन उनके कोई पुत्र नही था इस बात की चिन्ता उन्हें हमेशा सताती रहती। नल राजा ने पुत्र के लिए अनेक उपाय किये, देवी-देवताओ का पूजन किया, तीर्थ-व्रत, दान-पुन्य किया किन्तु सब व्यर्थ हुए। एक दिन एक परदेशी ब्राह्मण आया। राजा ने कहा, 'हे महाराज, हमारे पुत्र नहीं है, सो कोई ऐसा उपाय बताइये जिससे हमारे पुत्र हो।' ब्राह्मण ने कहा, 'आप वाराहजी की यात्रा का सकल्प कीजिये, आपके जरूर पुत्र होगा।' राजा ने वाराहजी की यात्रा का मन मे सकल्प किया। कुछ दिनो बाद ही रानी के गर्भ रह गया तथा नौवें महीने पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा-रानी को बहुत खुशी हुई। राज्य भर में बधाई बटी। कैदियो को मुक्त कर दिया गया। सभी को मुंह-मागा धन दिया गया। पुत्र का नाम साल्ह कुंवर रखा गया, किन्तु राज-माता ने किसी अनिष्ट की आशका से कुवर का नाम ढोला रखा। तीन वर्ष बीत गये। एक दिन राजा-रानी दोनों को एक साथ सपना आया कि उन्होने पुष्करजी की जिस यात्रा का सकल्प किया था उन्हें अब करनी चाहिए।

राजा ने सुबह अपने प्रधानो को बुलाया और सारी तैयारी कर दल-बल सहित रवाना हो गये और पुष्करजी में पहुंचे। राजा-रानी ने पहले तो वाराहजी की विधिवत् पूजा की, फिर पुष्करजी में स्नान कर अन्य सारे देवी-देवताओ की पूजा की। राजा-रानी दोनो बहुत प्रसन्न थे कि उनकी यात्रा सफल हुई। नल राजा ने अपने डेरे पिंगल राजा के डेरो के पास ही डाल दिये। धीरे-धीरे दोनों राजाओं में बहुत स्नेह-सम्बन्ध हो गया।

एक दिन दोनो राजा पिंगल राजा के डेरे में बैठे चौपड़ खेल रहे थे। उधर मारवणि की धाय गोद में मारवणि को लिए रानी के डेरे के बाहर उसे खिला रही थी। तभी उसकी मुलाकात ढोला की धाय से हो गयी। ढोला की धाय ने पूछा कि तुम कौन हो और तुम्हारी गोद मे यह लड़की कौन है? मारू की धाय ने कहा कि यह पिंगल राजा की लड़की मारवणि है और मैं इसकी धाय हूँ। तब ढोला की धाय ने पूछा कि राजाजी के कितनी रानियां है और मारवणि किसकी धेवती है? मारू की धाय ने कहा कि राजाजी के चार रानिया है, और मारू सांवतसा देवड़ा की धेवती है। इस तरह ढोला की धाय ने सारी बातें पूछ-पूछकर पूरा पता लगा लिया। जब नल राजा चौपड खेलकर उठे और रास्ते मे आ रहे थे तो ढोला की धाय ने सारी बातें नल राजा को कह सुनायी, और कहा, 'महाराज, मारवणि बहुत सुन्दर है। ढोलाजी से शादी कर दीजिए।'

नल राजा अपने डेरे में आया और उसने अपने प्रधानों को बुलाकर कहा कि ढोला की शादी मारवणि से करेंगे। सभी प्रधानो ने प्रसन्नता जाहिर की। तब नल राजा अपनी रानियों के डेरो में गया और बोला कि मारवणि की शादी ढोलाजी से करेंगे। रानियो ने भी अपनी स्वीकृति दे दी। तब राजा ने प्रधानो से कहा कि हम राजा पिंगल के डेरे में जाते है। तुमलोग पीछे से वहां जाकर सगाई वाली बात कहना। यह कहकर राजा भलीभाति सजकर पिंगल राजा के यहां गया। पिंगल राजा ने बहुत आदर सहित नल राजा की आवभगत की और दोनो बैठकखाने मे बैठे बात कर रहे थे कि नल राजा के प्रधानो ने आकर पिंगल राजा के प्रधानो से कहा कि नल राजा आपके यहां मारवणि को मांगने आये है। यह बात प्रधानो ने जाकर राजा से कही। यह सुन पिगल राजा के मन में बहुत हर्ष हुआ और उन्होने नल राजा से कहा कि आपका कहा हमने कबूल किया। कृपया एक बार मारवणि को यहां बुलाइये। तब धाय मारवणि को लेकर आई। राजा नल उसे देख बहुत खुश हुआ।

नल जद निरखी मारवी जाणे बियो मयक।
ऊभाणी आनीर अलि कोई नहीं कलक॥

नल राजा ने मारवणि की गोद भरी और पिंगल राजा से विदा होकर अपने

डेरे को आया और कहा कि आज ढोला की सगाई कुंवरी मारवणि से कर दी है। यह सुन सभी बहुत प्रसन्न हुए।

उधर पिंगल राजा महलों मे गये और मारवणि का भाति-भाति से लाड लडाने लगे, तब उमादे रानी ने कहा कि आज आप मारवणि को इतना प्यार किस बात पर कर रहे है? तब राजा ने हँसकर कहा कि आज मारवणि ढोलाजी को दे दी है। यह बात सुनकर उमादे रानी ने राजा को बहुत धिक्कारा और कहा कि हमारी लडकी हमारे बिना पूछे ही दे दी।

आखे उमा देवडी मालम हीय विचार।
मोह पियारी मारवी दीधी समदां पार॥

तब पिंगल राजा ने कहा कि एक बार ढोला को बुलाकर देख लो तो तुम्हें कोई शिकायत नही रहेगी। इस पर उमादे रानी ने दमयती रानी से कहलाया कि एक बार कुवर को हमारे डेरे मे भेज दें। दमयती रानी ने ढोला को अच्छी पोशाक पहनाकर, खूब अच्छी तरह से सजाकर रानी के पास भेज दिया। रानी कुवर को देख बहुत प्रसन्न हुई और उसकी गोद भराई की रस्म पूरी की। फिर बहुत जल्दी पंडित को बुलाकर लग्न का शुभ दिन निश्चित किया। बहुत आनन्द-उछाह हुआ। तोरण-स्तम्भ लगाये गये। इस तरह बहुत धूमधाम से विवाह हुआ। पिंगल राजा ने घोडा-ऊट, दास-दासी, सोना-चांदी के थाल और तरह-तरह की वस्तुए दहेज मे दी।

पिंगल राजा का वापस पुंगलगढ़ लौटना

इधर पिंगल राजा के भाई गोपालदास ने सन्देश भेजा कि अब आप जल्दी पधारिये। पिंगल राजा अपने भाई का आया हुआ कागज लेकर नल राजा के पास गया और कागज दिखाकर कहा कि अब हमें अपने देश जाने की आज्ञा दीजिये। तब नल राजा ने बहुत आदर से सभी को भोजन कराया और पिंगल राजा को विदा किया। राजा को पहुंचाने नल राजा दूर तक साथ गये और कहा कि आपने दहेज तो बहुत दिया पर मारु को भी एक बार हमारे पास छोड जाइये। तब पिंगल राजा ने कहा कि मारु अभी भोली है, धाय मां के बिना एक पल भी नही रहेगी। इसलिए अभी सात-आठ वर्ष तक तो भेजने का हमारा विचार नही है। पिंगल राजा ने अपने घर पहुच कर सभी को मारु के विवाह की बात कही। सुनकर सभी बहुत प्रसन्न हुए।

इसी तरह दिन व्यतीत होते गये। ढोला सोलह वरस का हो गया। इधर नल राजा का विचार बदल गया, उसने अपने राज्य के आदमियो को मना कर दिया कि ढोला को मारू के सग विवाह की वात मत बताना, इसकी सगाई मालवा करेंगे, इसलिए कि—

मालव देस सुहामणो जह सुखिया सहुलोक।
परणावीजै साल्ह ने, देसी सगला थोक॥

अस्तु नल राजा ने अपने आदमियो को मालव देश में भीमसेन राजा के पास भेजा। राजा के आदमियो ने भीमसेन से जाकर कहा कि नल राजा आपकी कुवरी मागते है। यह सुनकर भीमसेन बहुत प्रसन्न हुआ। उसने अपने कुटुम्बियो से पूछकर शुभ लग्न निकलवाया और नल राजा के आदमियों के साथ अपने आदमियों को भेजकर लग्न का दिन तय किया। नल राजा बारात सजा कर मालवा आये और खूब धूम-धाम से ढोला से मालवणि की शादी हो गयी।

ढोलाजी मालवणि के मोह मे मोहित रहने लगे। मालवणि को ढोला के प्यार से इतना गर्व हो गया कि वह महलों से बाहर निकलती ही नही थी और सास की परवाह नहीं करती थी। इस कारण मालवणि की सास मालवणि से बहुत रुष्ट रहती थी। एक दिन सयोग से ढोला महल से बाहर अपने मित्रों से मिलने गया तो मालवणि ने मन मे विचार किया कि आज तो मैं भी सास के पांव पड़ने के लिए जाऊ। मालवणि जाकर सास के पाव लगी तब सास ने आशीष के बदले यह कहा :

गरव गहेली मालवण कहियो कोइक वोल।
मारवणि अलकी हुई, तद मोह्यो तै ढोल॥

इसके बाद सास अपने पास बैठी औरतों से कहने लगी कि मारवणि को बुलायेंगे। यह बात सुनकर मालवण गुस्से से तिलमिला उठी, और सास के पास से उठकर अपने महल में ढोला के पास आई। ढोला अपने पलग पर बैठा हुआ था। मालवण को देखकर बहुत प्यार से हाथ पकड़कर अपने पास बैठाया और उसको उदास देखकर पूछा कि तुम आज इतनी उदास क्यों हो? मालवण ने कहा, 'आज मेरी सखियों ने मुझसे कहा कि तुम्हें ढोला के प्यार पर इतना घमड

है, लेकिन ढोला ने प्यार के बदले मे तुझे क्या दिया है ?' ढोला ने कहा, 'तुम कहोगी सोही देंगे। तुमसे वढकर मेरे लिए और क्या है ? तुम चाहो सो माग लो।' तब मालवण ने कहा, 'आप देंगे, पर ससुरजी नही देने देंगे।' तब ढोला ने ताव में आकर कहा, 'तुम्हारी चाही हुई चीज और हमारी आज्ञा होने के बाद उसे कोई नही टाल सकता है।' तब मालवण ने कहा, 'नलवरगढ की चारो दिशाओ के रास्ते-दरवाजे मुझे सौंप दें। मेरे हुक्म बिना आपसे कोई मिलने नही पावे। जितने भी द्वारपाल-सरक्षक है सभी मेरी आज्ञा के अनुसार चलें, इतना मैं आपसे मांगती हू।'

ढोला ने यह वात मजूर कर ली। तब मालवण ने अपने मैके सन्देश भेजकर वहां से आदमियो को वुलाया और चारो दरवाजो पर, चारो दिशाओं मे तथा ढोला के पास निगरानी के लिये कड़ा पहरा वैठा दिया कि उसके हुक्म बिना कोई ढोला से मिलने नही पावे और यह भी कह दिया कि पुगलगढ से कोई आदमी आवे और उसके पास मारवणि की चिट्ठी-पत्री हो तो चिट्ठी फाड़ फेंकना या हमारे पास पहुचा देना और आदमी को मरवा डालना।

इस तरह जो भी आदमी मरवण का सन्देश लेकर नलवरगढ आता वह मारा जाता और ढोला को इसकी कोई खवर नही मिलती। इस तरह बहुत दिन बीत गये।

आना घोड़ो के सौदागर का पुंगलगढ़

कुछ दिनो बाद परदेशी घोडो का एक सौदागर घोडे बेचने नलवरगढ में आया। ढोला ने उसके पास से वहुत-से घोडे खरीदे। सौदागर चार-पाच मास नलवरगढ में रहा। घोडो के दाम मिल जाने पर वहा से चला और पुगलगढ में आया। पिंगल राजा ने भी उसका आदर किया और घोड़े भी खरीदे।

गाव से आध कोस दूर एक बाग था। घोडों का सौदागर वहीं ठहरा हुआ था। एक दिन मरवण अपनी सखियो के साथ उसी बाग में घूमने आई। जिस समय सौदागर ने मारवणि को देखा उस समय उसे ऐसा लगा कि किसी अद्भुत देव-बाला को देख रहा हो। उसने मारू की सखियों से पूछा

तिण देखत ही पूछियो कूण है राजकुमारि।
किह पीहर किह सासरो विगत कहो सविचारि॥

सहेलियो ने उत्तर दिया -

कुवरि पिंगल राव री मारवणि इण नाम।
नलवरगढ ढोले कुवर परणी मोहकर ठाम ॥

तब सखियों ने पूछा, 'सौदागरजी, आप कहां से आये हैं ?' सौदागर ने कहा, 'मैं नलवरगढ से आया हूं। वहां मैं पाच-सात महीना रहा था। ढोला ने हमसे घोड़े खरीदे और हमारी बहुत खातिरदारी की।' तब सहेलियो ने कहा, 'हमे वहां का हाल बताइये।' सौदागर वहां का सब हाल बताने लगा। इस समय पिंगल राजा का नाई घोडो को टहलाने निकला था, सो वहां आ पहुचा और बैठकर सुनने लगा। मारवणि भी छिपकर सब बातें सुनने लगी। सौदागर ने कहा, 'ढोलाजी ने तो मालव-नरेश भीमसेन की बेटी मालवण से शादी कर ली है। ढोलाजी ने उसीके वश में होकर चारो दिशाओं के चारों दरवाजे मालवण को सौप दिये हैं। मालवण ने दरवाजो, दिशाओं तथा ढोलाजी की निगरानी में अपने पीहर के आदमियों का कडा पहरा बैठा रखा है कि ढोलाजी से कोई मिलने नहीं पावे। यहां से जो भी आदमी जाता है वह नलवरगढ तक पहुच ही नहीं पाता, मालवण के पहरेदार कागज छीनकर मालवण को दे आते है और आदमी को वहीं मारकर फेंकते है।' सारी बातें सुनकर नाई ने राजा को जाकर सब बातें बता दीं। पिंगल राजा ने सौदागर को बुलाया और सभी बातें पूछीं। सौदागर ने ढोला की तरह-तरह से प्रशंसा की और सारी बातें कह सुनाई। सब हाल मालूम कर राजा ने सौदागर को विदा किया। अब पिंगल राजा के मन मे मारु के भविष्य को लेकर बहुत चिन्ता हुई।

मारवणि का विरह

इधर मारवणि ने भी बाग में छिपकर सभी बातें सुन ली थी। सुनने के बाद उसके मन मे विरह जागृत हुआ और बिल्कुल थकी हुई-सी हो गई। जब वह बाग से महलों की ओर जाने लगी तो रास्ते में मेघ उमडने-घुमड़ने लगे और बिजली चमकने लगी। तब विरह-विदग्धा मारु ने कहा—

बीजलिया बिलखियां जलहर तूंहि लजि।
सूनी सेज विदेस पिव मुधरड मुधरड गजि॥

इस तरह बातें करती, विरह की मारी, थकी हुई मारु घर आई। अब वह उदास रहती और अपनी किसी भी सखी से कोई बात नहीं करती। रात में सोई तो स्वप्न में ढोला मिला। अचानक मारवणि की आंख खुली तो अपने

को अकेली पाकर, आकुल-व्याकुल होकर, एक सखी से कहने लगी—

सुपना तू मोने दही तौने दह्ज्यो अग्ग ।
सो कोसां सज्जन बसै सूती थी गल लग्ग ॥
सुपना में सज्जण मिले मैं भर घाली बाथ ।
नीद गई पिउ बीछड्या जागत पटकूं हाथ ॥

सब सखियां मारू से कहने लगीं, 'तुमने तो ढोला को अभी देखा तक नही है, फिर इतना प्रेम किस तरह उमड रहा है ? शादी हुई तब तुम डेढ बरस की थी, ढोला तीन बरस का था, वह सब कुछ तुम्हें याद नहीं है। ढोला की मूरत कैसी है, कैसी नहीं है, बिना यह मालूम हुए ही ढोला से इतना प्रेम कर बैठी हो कि रात-दिन ढोला की याद में खोई रहती हो, पल भर भी नही भूलती हो। तुम्हारी यह दशा देख हमे तो आश्चर्य होता है।'

तब मारू ने कहा, 'तुमलोगों का कहना तो ठीक है, पर सिंह के बच्चे को भी कोई हाथी मारना सिखाता है क्या ? रात के समय स्वप्न में ढोला आकर मुझे जगा जाता है, फिर रात भर मुझे नीद नही आती है। हमारा शरीर तो यहां है और जी नलवरगढ है। ढोला से मिलने को मेरा जी बहुत व्याकुल है।'

इस तरह विलाप करते-करते मुश्किल से रात काटी। सुबह उठते ही सखियों ने सब बातें उमादे रानी से जा कही

ढोला सू सूपने मिले मारू चित्त उदास ।
कागद वेगा मोकलो खबर मगावो जास ॥

तब रानी सखियो से कहने लगी, 'ढोलाजी तो मालवणि के वश में हो रहे है। ढोला को वश में कर मालवण ने सारे रास्ते बन्द कर दिये है। यहां से जो कोई भी जाता है वही मारा जाता है। मैंने तो बहुत कागज भेजे पर जो कोई भी कागज लेकर गया वह वापस नही आया। भला मैं अब और किसको भेजू ? मरने के डर से कोई भी नहीं जाना चाहता है।'

रानी ने फिर से आदमी के हाथ कागज भेजा जिसमें तरह-तरह के समाचार लिखे। जब कागज लेकर आदमी नलवरगढ पहुचा तो पहरेदारों ने कागज छीनकर मालवण को दे दिया और आदमी को वहीं मार फेंका। मालवण ने कागज पढा और फाडकर फेंक दिया। इसी तरह एक वर्ष और व्यतीत हो गया। ढोला तक कोई कागज नही पहुचा।

इधर विरह के मारे मरवण का बुरा हाल था। एक दिन वह तिमजिले पर सोई हुई थी कि पपीहा बोलने लगा, पपीहे की बोली सुन मरवण को अधिक विरह-व्यथा व्यापी और विलाप करते-करते मारु को नींद आयी ही थी कि उसी समय बाग में कुरझा बोली, तब कुरझा की आवाज सुन मारु फिर जग आई और कुरझा को उलाहना देने लगी।

मारू की सखिया कुरझा से कहने लगीं कि मारु तुम्हें उलाहना देती है। तुम अपनी बोली बन्द करो, तुम्हारी बोली मारू को व्यथा जगानेवाली लगती है। तुम्हारा पति तो तुम्हारे पास है, फिर भी तुम रात के समय क्यो कुरला रही हो ? तुम्हारी बोली से मारु को विरह सताता है, इसलिए वह तुम्हें उलाहना दे रही है।

इस तरह जब मारवणि और उसकी सखियां रो-रोकर कुरझा से कह रही थीं तब उमादे रानी ने सभी बातें सुन लीं और जाकर पिंगल राजा से सारी बातें कह सुनाईं।

रानी की बात सुन पिंगल राजा ने कहा, 'क्या करें ? कितने ही आदमी भेजे, पर कोई भी वापस नहीं आया, सभी मारे गये।' तब रानी ने कहा, 'मैंने तो आपसे कहा था कि इतनी दूर लड़की को मत दो।' तब राजा ने कहा, 'जो होना था वह हो गया, अब तुम कहो तो पुरोहित को भेजें।' रानी ने कहा, 'अच्छी बात है, भेजिये।' राजा ने पुरोहित को बुलाकर कहा, 'तुम नलवरगढ़ जाकर ढोला को बुला लावो।'

इतने में मारवण की एक सखी ने राजा और पुरोहित के बीच हुई सारी बातें आकर मारवणि को कह सुनायी। तब मारवण ने अपनी सखी के द्वारा अपने पिता को कहला भेजा कि पुरोहित की जगह ढाढ़ी (गाने-बजानेवाले) को भेजें जो ढोला को रिझाकर साथ ले आये।

तब राजा ने पुरोहित को वापस भेज दिया और दो ढाढ़ी-बघुओ (गाने बजानेवालों) को बुलाया और कहा, 'हम कहें वैसे जाना, बहुत सावधान रहना, अपना नाम तथा गाव और क्या काम है सब झूठ-झूठ बताना।' ऐसा कह राजा ने एक कागज लिखा जिसमे बहुत अर्ज-विनती लिखी। उमा रानी ने भी दमयंती रानी को एक कागज लिखा कि हमे आपका ही आसरा है, हमने तो अपनी लड़की को आपकी गोद में दे दिया था, अब कुंवर को शीघ्र ही भेजें। राजा ने ढाढियो को खूब तेज पवन की चाल चलनेवाले दो घोड़े दिये। ढाढियो ने अपने

झोले-झडे, कपडे-लत्ते लिये, सोने की कटार-तलवार ले ली, और आठ-दस आदमी साथ ले लिये ।

पिंगल राजा के पास से विदा लेकर ढाढी मारवणि के पास आये, तब मारू ने अपनी एक सखी को दोहे सिखाकर ढाढियों के पास भेजा—

ढाढी जो ढोलो मिले कहे अम्हीणी बत्त ।
धण कणियर री कंब ज्यू सूकी तोई मुरत्त ।
पथी एक सदेसडो लग ढोले पहुचाई ॥

मारवणि का सन्देश ले ढाढी नलवरगढ के लिये रवाना हुए ।

इधर मारवणि पुंगलगढ मे बैठी ढोला की बाट जोहती है, हर रोज काग-मोर उडाती है । एक दिन सुबह ही उठ मारू झरोखे में बैठी तो आगन में कौवा कांव-काव करने लगा । मारू ने काग से कहा, 'अगर ढोला आ रहा है तो उड जा ।' और फिर कहने लगी—

कागा पीव न आवियौ कियौ वडेरो चित्त ।
लकडी होय त दोय जलि हू अेकलडी नित्त ॥

इसी तरह नित्य मारू पक्षियों से विरह-वार्त्ता करती हुई दिन गुजारती है ।

जाना ढाढियो का नलवरगढ ढोला के पास

कई दिनो बाद ढाढी नलवरगढ आ पहुंचे । चारो तरफ चौकीदार रास्ता रोके हुए थे । वे उन्हें देखते ही मारने दौडे । तब दोनो ढाढ़ी-भाई कहने लगे, 'हम लोग तो नलवरगढ में नल राजा को गा-बजाकर खुश करने आये है कि वे प्रसन्न होकर हमें इनाम देंगे । अगर हमें मालूम होता कि जो कोई मागने आता है उसे राजा मरवा डालता है तो हम लोग बिल्कुल नही आते ।' तब चौकीदारो ने कहा, 'तुम मारू का सन्देश लेकर आये हो क्या ?' ढाढी कहने लगे, 'हम जानते ही नही कि मारू कौन है ? कैसी है ? भला आपलोग भी राजपूत होकर कैसी बातें करते हैं ?' चौकीदारों ने बहुत तरह से आजमा लिया, उनका सारा सामान भी उथल-पुथल कर देखा गया पर कोई कागज नजर नहीं आया । तब ढाढियों ने कहा, 'हम तो राजा को गा-रिझाकर मागने आये है । भला आप क्यो हमे तग करते है ? हम किस चीज का कागज लाते ?' तब चौकीदारों ने ढाढियो को छोड दिया । ढाढी वहा से चले और गाव के भीतर एक कुम्हारी के घर के पास आ पहुंचे । उस समय कुम्हारी आवा पका रही थी ।

ढाढियों ने उससे जाकर कहा, 'बहन, हमें यहां रहने के लिए कोई अच्छी-सी जगह बताओ।' तब कुम्हारी बोली, 'तुमलोग मारू का समाचार लाये हो क्या ?' तब दूसरे भाई ने कहा, 'हम जानते ही नहीं मारू कौन है, कहां रहती है ?' और एक मोहर कुम्हारी के हाथ में रख दी, तब उसने प्रसन्न होकर उन्हें रहने के लिए अच्छी जगह दे दी। कुम्हारी का घर राज-दरबार के पास ही था।

ढाढियों ने कुम्हारी से कहा, 'ढोला के पास मालवण नहीं रहे तब हमसे कहना, हमलोग भेंट करेंगे।' तब कुम्हारी ने पूछा कि मालवण न रहे तब क्यों ? ढाढियो ने कहा कि स्त्रियों के सामने न मिलनें का हमारा नियम है। तब कुम्हारी नें अपने भानजे को राज-ड्योढी के पास इस बात की निगाह रखने के लिए रखा। एक दिन मालवण अपनी सहेलियों के साथ बाग में घूमने गयी और ढोला बाहर आकर मर्दाने-बैठक में बैठा। तब कुम्हारी के भानजे ने ढाढियों से आकर कहा कि आपलोग जैसा मौका चाहते थे वह अभी है। तब ढाढियों ने सिर से लेकर पैर तक कपड़े-लत्ते पहने और सज-धजकर बीन हाथ में लेकर चल पडे। महल के पास आ, दरवानों से कहा, 'राजा से कहो कि आपसे मिलने के लिए बाहर ढाढी खडे हैं।' ढोला ने उनलोगों को बुलाया और कहा, 'यहां बैठो और गावो।' तब ढाढियो ने मारू के सन्देश वाले दोहे गाने शुरू किये। उन्होने सन्देश के दोहे सुबह गाना शुरू किया था और गाते-गाते आधी रात हो गयी। तब राजा ने ढाढियों को विदा किया और अपना एक नौकर उनके साथ दिया कि इन्हें किसी बात की तकलीफ न हो और आप महल में आ सो रहे, पर नींद नही आयी। ढोला के मन मे यही विचार उठते रहे कि यह मारू कौन है ? इसी सोच-विचार में रात बडी मुश्किल से काटी और मन में विचार किया कि सुबह ढाढियों से पूछूंगा। सुबह होते ही ढोला ने ढाढियों से पूछा, 'मारू के बारे में हमे सारी बातें ब्यौरे से सुनाओ।' पर ढाढियों ने इन्कार कर दिया और कहा, 'महाराज, सारी बात कहने की हमारी हिम्मत नहीं है, कहेंगे तो मारे जायेंगे।' उन्हें निडर करने के लिए ढोला ने उनकी रक्षा के लिए चारों ओर अपने नौकर खड़े कर दिये। तब ढाढी बोले, 'पुगलगढ के राजा पिंगल, जिनकी लड़की मारवणि है, उन्ही के भेजे हम यहां आये है' और एक दोहा कहा—

चदमुखी हसा गवणि कोमल दीरघ केस।
कचन वरणी कामणी वेगो आव मिलेस॥

यह सुनकर ढोला के मन में मारू के प्रति प्रेम उत्पन्न हुआ और उसने ढाढियो से पूछा कि मारू के हाथ का कोई कागज है क्या ? ढाढियो ने कहा कि यहां तक तो हम किसी तरह झूठ बोलकर आ गये है, पर अब मरने से डरते हैं। हमारे पहले इसी तरह सन्देश लाने वाले सैकडो आदमी मारे गये हैं।

तब ढोला ने ढाढियो को दिलासा दिलाई और कहा, 'तुमलोग मुझे प्राण से भी प्यारे हो, निडर होकर मारवण का सन्देश मुझे दो।' तब एक ढाढी ने अपनी बीण की नली खोलकर मारू के हाथ का कागज ढोला को दिया। ढोला ने कागज ले छाती से लगाया और बडे प्रेम से उसमें लिखे हुए दोहे पढने शुरू किये"

अब के जो प्रियतम मिलौ पलक न छोडू पास।
रोम-रोम में छिप रहू ज्यू-ज्यू कलियण में वास।
ढोला जे आया नही थोडा दिनाक माह।
तो आयां न लाधसी मारू पजर माह॥

कागज पढकर ढोला के मन में प्रेम उमग आया, लेकिन कागज जगह-जगह से गल गया था, अक्षर मिट-घुल गये थे, इसलिए ढोला ने पूछा—

कागद अखर गलिया काइक थई कुवाण।
कै पंथी भीना बुहा (कै) लिखणहार अणजाण॥

यह सुन ढाढी बोले—

कागद गलिया आंसू आ नैणो नेह विलग्ग।
पडि-पडि बूद पयोहरो उबट-उबट तिण लग्ग॥

सुनकर ढोला की आंखों मे भी आसू भर आये।

बाद में ढाढियो ने एक कागज नल राजा को दिया और दूसरा दमयती रानी को दिया। वे भी कागज पढ बहुत प्रसन्न हुए।

अब ढोला को मारू से मिलने की बहुत चिन्ता हुई। तब ढाढी बोले कि आपको जल्दी ही जाना होगा और हमलोगों को भी अभी ही विदा कीजिए, नही तो वे लोग आतुर होंगे। इसके अलावा कहीं मालवण को मालूम हो गया तो कुछ उत्पात शुरु हो सकता है। ढोला ने ढाढियों को धनधान्य से तथा सभी तरह की वस्तुओ से सन्तुष्ट कर दिया। नल राजा ने एक कागज लिखा जिसमे

बहुत तरह से मनुहार लिखी, दमयन्ती रानी ने दो कागज लिखे, एक तो उमा देवड़ी को और दूसरा मारवणि को जिसमें मारू को बहुत तरह से दिलासा दी कि तुम्हें लेने ढोला को बहुत जल्दी भेजती हू। ढोला ने भी मारू को बड़े प्यार से पत्र लिखा कि मैं तुम्हें लेने बहुत शीघ्र ही आता हू! मेरा मन तुम्हारे पास ही पडा है। तुम्हारे बिना एक पल भी भारी हो रहा है। इसी तरह प्रेम-पत्र लिख ढाढी को दे उन्हें विदा किया, और नगर के बाहर बडी दूर तक खुद उन्हें पहुचाकर आया और कहा कि रास्ते में बहुत सावधान रहना।

प्रस्तुत होना ढोले का पुंगलगढ जाने के लिए और रोकना मालवणि का ढोले को

उधर जब ढोला बहुत देर तक वापस महल मे नही आया तो मालवणि के मन में कई तरह की चिन्ताए उठने लगीं। जब ढोला महल मे आ पलग पर बैठा तब मालवण ढोला के पास आई और बोली, 'आज क्या बात है, आप इतने उदास क्यो बैठे हैं? न तलवार खोली, न कपडे, क्या बात है?' तब ढोला ने बचपन मे मरवण के साथ हुए अपने व्याह की बात बताई। तब मालवण ने कहा, 'यह बात झूठ है, कही आप किसी के पास ठगा तो नही आये हो!' तब ढोला ने कहा, 'पिंगल देश से ढाढी आये थे। मारवणि के हाथ का कागज लाये थे।' यह सुन मालवण बोली, 'मैंने ऐसा सुना है कि आपके कोई ग्रह था, तब आपके पिता से पडितों ने कहा कि इसे किसी नीच के घर व्याह दो, तो ग्रह का भार टल जायेगा। इसीलिए आपको एक नीच के घर की बदसूरत लडकी से व्याहा था। अब वही आपकी रानी होना चाहती हो तो मालूम नहीं, और कोई दूसरी तो है नही। भले ही आप सभी से पूछ लीजिए।'

ढोला ने सभी से पूछा तो सभी ने मालवणि के डर से मालवणि वाली ही बात कही। आखिरकार ढोला गांव के सम्मान्य पुरोहित के घर गया और उनके सामने सारा हाल कहा और उनसे हाथ जोडकर अनुरोध किया कि आप पुगलगढ जाइये और कृपया सारी बात का पता लगाकर आइये कि मारवणि कैसी है?

महीनों तक ढोला पुरोहित के लौटने की प्रतीक्षा करता रहा। आखिर एक दिन रात के समय पुरोहित वापस लौटा। ढोला तत्काल उनके घर गया और पूछा कि मरवण कैसी है? पुरोहित ने बहुत प्रशसा की और कहा—

चद-बदन मृग-लोचनी लखण बत्तीस विवेक।
मारू जेही अपछरा इन्द्र तणी नहीं एक॥

मारू नारी पद्‌मणि बोले इमरत बोल ।
अग-अग की ओपमा वरणे कवि किल्लोल ॥

पुरोहित ने तरह-तरह से मारू के रूप का बखान किया । सुनकर ढोला बहुत प्रसन्न हुआ । उसने पुरोहित से कहा, 'मारू से मिलने की तो बहुत इच्छा है, पर मालवणि जाने नहीं देगी ।' ऐसा कह पुरोहित के पास से उठ ढोला मालवणि के महल मे आया और पलग पर बैठ पहले तो इधर-उधर की बात की, फिर कहने लगा, 'मैं मरवण से मिलने पुगलगढ़ जाऊगा ।'

यह सुनते ही मालवण मूर्छा खाकर गिर पडी । तब सहेलियो ने जल्दी से हवा दे, जल छिडक, उसे सचेत किया । मालवण जब सचेत हुई तो उसने मन में विचार किया कि इस तरह तो ढोला रहने का नही, कुछ दूसरे उपाय से ही उसे रोकना चाहिए । यह सोचकर वह बोली, 'ये गर्मी के दो महीने और ठहर जाइए, फिर चले जाइयेगा ।'

ढोला ने विचार किया कि जबर्दस्ती जाऊगा तो मालवण मर जायेगी, यह सोचकर वह दो महीने मालवण के पास और ठहर गया । दो महीने बाद बरसात शुरू हो गई तो ढोला फिर जाने को तैयार हो गया और मालवण से बोला—

पग-पग पाणी पथ सिर गड्डी बादल छांह ।
पावस आयौ पद्‌मणी कहो तो पुगल जांह ॥

मालवण ने सुनकर आखो मे आसू भरकर कहा—

ढोला सावण आवियौ उमड्त आयो मेह ।
चमकण लागी बीजली दाझण लागी देह ॥
सावण आयो साहिवा पगे विलूंवी गार ।
व्रच्छ विलूवी वेलडयां नरां विलूबी नार ॥

इस पर भी जब ढोला नहीं माना तब मालवणि ने ढोला को रोकने का दूसरा बहाना पेश किया—

ढोला न हूय ऊतावलौ, मिलसा दई क लेख ।
म्हांको कहियो जो करो, दसराहा लग देख ॥

आखिर मालवणि के कहने से ढोला दसराहे तक फिर रुक गया ··और स्थिति

यह हो गई कि जब-जब ढोला जाने की कहे तभी मालवणि कुछ-न-कुछ बहानें से रो-रोकर उसे रोक ले।

ढोलो हल्लाणो करइ धण हल्लिया न देह।
झब-झब झवे पागडे डब-डब नयण भरेह॥

आखिर जब मालवणि ने देखा कि अब ढोला नहीं रहने का तो कहा—

हाल-हालू मत करो हियड़ा सालम देह।
जे सांचै हो हालस्यो सूता पल्लांसिह॥

इस बात के लिए ढोला राजी हो गया और जहां ऊंट बंधे रहते थे वहां जाकर बोला—

किण गल घालू घूघरा किण मुख बाहू लज्ज।
कवण भलेरो करहलो मूंघ मिलावे अज्ज॥

तब एक ऊंट ने कहा—

मो गल घालो घूघरा मो मुख बाहौ लज्ज।
हूं ज भलेरो करहलो मूंघ मिलावे अज्ज॥

तब ढोला ने उस ऊंट को खूब सजाकर दरवाजे पर लाकर बांधा और खुद महल में कमरबन्द बांधने गया। इस बीच मालवण ऊंट के पास आई और स्नेह से बोली—

म्हारा भाई करहला दांन इतो मो देह।
जद ढोलो चढि निसरे तद खोडो हुय रेह॥

करहा ने आपत्ति करते हुए कहा—

खोडा हुआं तो डांभिजा बांधा भूख मरांह।
थे वे सज्जण रलि मिलो म्हे बिच दुख सहाह॥

इस पर मालवण ने उसे दिलासा देते हुए और आंखों में आसू भरकर कहा—

वाघू बड़ री छांहडी नीरूं नागरवेल।
डाभ संभालू हाथ सू चोपड़ सूं चपेल॥
भाई कह बतलायसूं नागरबेल निरेस।
हउ-हउ करहा कुवर ने मत लेजाय विदेस॥

आखिर करहे को दया आई और वह राजी हो गया। तब मालवण महल में आई। ढोला कमरबन्द बांधकर करहे के पास आया। करहे को उठाकर खड़ा किया तो तीन पैरों से खड़ा हुआ, तभी पास से गधे के रेंकने की आवाज आई। मालवण ने सोचा कि यह तो ढोला के लिए शुभ सगुन हुआ है जो गधा बोला। वह इसी विचार में थी कि तभी उसकी सखियों ने आकर बताया कि ढोलाजी करहे को दाग रहे हैं। तब मालवणि को अपनी एक सखी द्वारा ढोले को कहला भेजा—

ढोला म्हारा बाप रै छो करहा रो वग्ग।
जे करहो खोडो हुवो तो गादह दिजै दग्ग॥

तब ढोला ने उसी गधे को पकड़ मंगाया जो रेंका था और दाग दिया। इस तरह उस दिन ढोला के जाने का मुहूर्त टल गया। ढोला वापस महल में आया, तो मालवण ने बहुत तरह से ढोला को अपने वश में करने की चेष्टा की, पर उसकी एक न चली। तब मालवण ने कहा कि मुझे नींद आ जाय, तब आप चले जाना। ढोला यह बात मान गया। पन्द्रह दिन बीत गये पर मालवण को एक पल भी नींद नहीं आई। सोलहवें दिन ढोला ने विचार किया कि मेरे सोये बिना यह नहीं सोयेगी, यह सोचकर ढोला थोड़ी देर के लिए झूठी नीद सो रहा। तब मालवणि ने विचार किया कि ढोला को तो नींद आ ही गई है, अब थोड़ी देर मैं भी सो लू, यह सोचकर वह भी सो रही। सोते ही उसे बहुत गहरी नींद आ गयी। ढोला चुपके-से उठकर बाहर आया और उसने करहे को तैयार किया। चलते समय करहे ने मालवणि को जगाने के लिए जोर से बलबलाहट की, तुरन्त मालवणि की नींद खुल गई। उसने जब देखा कि ढोला वहां नहीं है तो उसे बहुत दु ख हुआ। वह जोर-जोर से विलाप करती हुई कहने लगी—

सज्जण चाल्या हे सखी सूना करै अवास।
गले न पाणी उतरे हिवै न मावे सांस॥

सज्जण चाल्या हे सखी बड़ री डाली मोड़।
हियो कलेजो कालजो तीनू लेग्या तोड़॥

इसी तरह रोते-रोते उसने अपनी सखियो को ढोला के पीछे दौड़ाया कि आज भर के लिए ढोला को वापस ले आवो। सहेलियो ने बहुत दूर तक खोज की, पर ढोला नहीं मिला तो वापस आकर मालवणि से कहा कि हमारे तो नजर नहीं

आये ढोलाजी । ऐसा सुन मालवण निगण हो फिर रोने लगी—

हुई रै जीव निलज्ज तू निकस्यो जात न तोहि
प्रिय विछुडत निकम्यो नही रह्यो लजावण मोहि ॥

प्रयाण ढोले का पुंगलगढ़ की ओर

इधर ढोला चलते-चलते पुष्करजी आ पहुचा । जब तालाब की पाल पर पहुचा तो वहा तोरण-थभ रुपे हुए दिखाई दिये । तब ढोला ने वही के एक आदमी से पूछा कि यहां पुष्करजी में ये तोरण-थभ किसके हैं, यहां किसकी शादी हुई थी ? तब वह आदमी बोला—

अथे ज चौक पुराविया पढ़िया वेद पुराण ।
धण भटियाणो मारवी ढोलो कूरम रांण ॥

तब ढोला ने अनजान बनकर पूछा कि यह ढोला और मारवी कौन हैं, कहां के वासी है, सो विस्तार से कहो ? तब उस आदमी ने कहा, 'नलवरगढ के नल राजा यहां यात्रा पर आये थे और पुगलगढ के पिंगल राजा भी तभी आये थे । पिंगल राजा की लड़की मरवण और नल राजा का लड़का ढोला दोनो का यहा विवाह हुआ था । तभी के ये तोरण-थभ आज तक यहां स्थापित हैं । ढोला बहुत प्रसन्न हुआ । उसने ऊट को पानी पिलाया और वहां से जल्दी-जल्दी आगे चला ।

उधर पिंगल राजा के दुश्मन उमर सूमरा को ढोले के आने की खबर लगी तो उसने अपने भाट को ढोला के पीछे लगा दिया कि तुम ढोला को मारू के अवगुण बताना ताकि वह निराश होकर वापस लौट जाए । भाट ने रास्ते में आ ढोला से पूछा कि आप कहां से तो आये हैं और कहां जायेंगे ? तब ढोला ने कहा कि मैं नलवरगढ़ से आया हूं और पुंगल जाऊंगा । फिर ढोला ने भाट से पूछा कि आप कहां से पधारे है ? भाट ने कहा कि मैं तो पुगल से ही आया हू । तब ढोला ने पूछा कि क्या आपने मारू को देखा है ? उससे मेरी शादी हुई है । तब भाट ने गभीर मुख से दुख प्रकट करते हुए कहा—

जिण धण कारण उमह्यो तिण धण सदावेस ।
तिण मारू रा तन खिस्या पडर हुआ ज केस ॥

ऐसा सुना ढोला के मन मे दुख हुआ । भाट चला गया तो उसने करहे से कहा—

करहा कहि कांसू करों जी मे हुई जकाइ।
नरवर केरा माणसा कांसू कहिस्या जाइ॥

अब ढोला बडे बेमन से धीरे-धीरे चलने लगा। तभी सामने से एक आदमी अपनी स्त्री के साथ आता दिखाई दिया। उसने पास आकर ढोला से पूछा कि आप कहा से आये हैं और आगे कहा जाना है? तब ढोला ने दुखी मन से कहा कि नलवरगढ से आया हू और पिंगल देश जाना है। उस आदमी की स्त्री चतुर थी। वह मारू के पास रह चुकी थी और पिंगल राजा ने ढाढी भेजे, यह भी उसे मालूम था। उसने ढोला से कहा कि आप एक बात मेरी सुनिये। आपको रास्ते में उमर सूमरा या उसका कोई भाट मिला होगा, उसने जरूर आपको कुछ झूठ-मूठ कहा है। शायद इसीलिए आप इतने उदास हैं। दरअसल वे हमारे दुश्मन है, आप उनकी बात पर विश्वास मत करिये। यह सुन डोला पुन बहुत खुश हुआ और जल्दी पिंगल देश पहुचने के लिए करहे को खूब तेज चाल से चलाने लगा।

उधर जो ढाढी मारू का सन्देश लेकर नलवरगढ गये थे वे वापस अब पुंगल आ आ पहुचे। वे लोग सोच रहे थे कि हमें रास्ते में बहुत दिन लग गये, ढोला तो हमारे पहले ही पुगल पहुच गया होगा। लेकिन जब पुगल पहुचकर ढाढियों ने पूछा कि ढोलाजी आ गये क्या? तब सभी ने कहा कि ढोलाजी तो अभी तक नहीं आये। तब ढाढी राजा के पास आये और राजा को नल राजा का लिखा हुआ कागज दिया और एक कागज दमयन्ती रानी का लिखा हुआ उमादे रानी को दिया। कागज पढकर वे लोग बहुत प्रसन्न हुए। ढोला आयेगा यह समाचार सुन बाकी सबको भी बहुत-बहुत खुशी हुई। तब ढाढी मारू के पास आये और ढोले का तथा रास्ते का सब हाल बताने लगे, तथा ढोला के हाथ का कागज मारू को दिया। ढोला के हाथ का लिखा हुआ सन्देश पाकर मारू की हालत आनन्द से पागलो जैसी हो गयी।

कागदिया मत मोकलो मोल पेहुंगा लेह।
अख्खर भींजें आसुवा नेण न बाचण देह॥

मारू जोवे बाटडी उभी आंगण छेह।
कागद जल भेला करे नाखे नेण भरेह॥

मारू का घर में मन नहीं लग रहा था, सो वह अपनी सहेलियों के साथ बाग में घूमने चली गयी।

उधर ढोला पुंगल की बस्ती मे बाग के पास पहुचा तो सूरज अस्त हो चुका था, इसलिए गांववालो को ढोला के आने की खबर नहीं हुई। बाग मे एक कुआ था। मारू अपनी सहेलियों के साथ वहीं बैठी हुई थी और सहेलियां गीत गा रही थीं। इनलोगो के गीत की आवाज सुन ढोला बाग के भीतर घुसा और कुए की तरफ आया तो ऊट खूब जोर से बलबलाया। ऊट की बलबलाहट सुन मारू की एक सखी ने कहा—

मारू ढोलो आविया करहो कर कुहेक।
साहिब तूठा सज्जणा दूधां बूठा मेह॥

अपनी सखी की बात सुन मारू ने तत्काल घूघट निकाल लिया और सहेलियों के बीच छिप गई और तुरत घर लौट गयी।

बागबान ने राजा को आकर ढोले के आने की बधाई दी। तब राजा ने दोनों ढाढ़ियों को भेजा। ढाढ़ियों ने आकर ढोला से मुलाकात की और वापस आकर राजा को बतलाया कि सचमुच ढोला ही आया है। राजा अपने लाव-लश्कर सहित बाग मे आया और बडे आदर-सत्कार और उत्साह सहित ढोला को महल में ले आया। सभी लोग ढोला को देख बडे हर्षित हुए। फिर राजा ने अपने खास नाई को बुलाकर ढोला को स्नान कराया, फिर उन्हें अच्छी पोशाक पहनाई तथा तेल-फुलेल-इत्र से सराबोर कर सुसज्जित किया। सहेलियां ढोला के रूप को देखकर बहुत प्रसन्न हुई। अब मारू भी नहा-धो, इत्र-सुगन्ध लगा, केशों में मोती पिरो, सोलह सिंगार कर तैयार हुई। मारू सबसे पहले करहे के पास गई। उसने करहे को घर के चौक के बीचो-बीच बंधवाया और सहेलियों से कहकर अपने सामने उसकी गर्द झड़वाई और बोली—

करहा तू भल सिरजियो मेल्यो साल्ह सुजाण।
नातर कदे न आवतौ तू हिज कारण जांण॥

ढोला-मारू मिलन

फिर मारू ढोला के पास आई। ढोला ने उसे सम्मान दिया तथा उसका हाथ

पकड़ अपने पास पलंग पर बैठाया। मारू की सलज्ज झुकी हुई नजरों से ढोला की नजरें मिलीं—

ढोलो मारू अेकठा करे कतूहल केल।
जांणे चदण रूखड़े विलगी नागरवेल॥

दो दिन ढोला वहां बहुत आनन्द-उछाह से रहा, फिर उसने राजा से कहा कि अब हमें विदा कीजिए। तब पिंगल राजा ने कहा, 'इतने बरसों बाद पधारे है, कम-से-कम एक महीने तो यहा रहिये ही। जब ढोला किसी भी तरह राजी नहीं हुआ तो राजा ने कहा कि अच्छा हम भेजने की तैयारी करते है, इतने दो दिन तो रहो। तब ढोला ने कहा, 'हमे रथ-पालकी की जरूरत नही है। हम यहां से इसी ऊंट पर चढकर चले जायेंगे।' इस पर पिंगल राजा ने कहा, 'यहा की स्थिति बहुत खराब है, यहां फौज साथ लेकर ही चलना चाहिए। फिर अपना दुश्मन उमर सूमरा भी न जाने रास्ते में क्या उत्पात मचा दे।' तब ढोला ने राजा की बात मान ली।

राजा पिंगल ने रथ-पालकी, हाथी-घोड़े सजाकर तैयार कराये। साथ में सौ सवार भी दिये तथा पूरी तैयारी कर खूब सावधान कर के मारू को विदा किया। इधर उमर सूमरा को ढोला के आने की खबर हुई तो उसने कहा—

'ढोला को मारेंगे और मारू को यहीं अपने पास रखेंगे।' उसने अपने आदमियों के साथ ढोला का रास्ता रोका, लेकिन ढोला की वीरता के सामने वह ठहर नहीं सका और पीठ दिखाकर भाग गया। रात हुई तो ढोला ने विश्राम लेने के लिए रेगिस्तान में पहला पड़ाव डाला। तम्बू तन गये और चौकीदार पहरा देने को तैयार हो गये। अपने तम्बू में ढोला और मारू पास बैठे-बैठे काफी रात गये तक अपने-अपने सुख-दुख की बातें करते रहे। बातें करते-करते आखिर दोनो को नींद आ गई। मारू के शरीर से चदन जैसी महक निकल रही थी। वहा पर साप बहुत थे। एक साप ने मारू को काट लिया। मारू की उसी समय मृत्यु हो गई। सुबह जब ढोला के खूब जगाने पर भी मारू न जगी तो ढोला जोर-जोर से रोने लगा और विलाप करते हुए बोला—

निसि भर सूती सुदरी बालम कठ विलंगी।
मोहण बेली मारवी पीछी नाग भुयंगि॥

ढोला ने तरह-तरह से विलाप करते हुए मारू को जगाने की बहुत कोशिश की पर मारू न जागी, तब निराश होकर ढोला स्वयं भी मरने को तैयार हो गया। सयोग से उसी समय शिव-पार्वती उस रास्ते से जा रहे थे। ढोला का रोना सुनकर पार्वती को दया उपज आई और उसने शिवजी से कहा, 'हे महाराज, मारू के विरह मे ढोला रो रहा है। यह स्वयं भी विरह में मर जायेगा। आप मारू को फिर से जीवित कर दीजिए।' तब शिवजी ने ढोला की परीक्षा लेने के लिए उससे कहा कि स्त्री के लिए क्यों रो-रोकर मरता है? स्त्री और बहुत मिल जायेगी। पर ढोला ने कहा—

शिव हुती ढोलो कहे कूडी गल्ल न कथ्थ।
हूणा जीणा अेकठा मरणा मारू सथ्थ॥

जब शिवजी ने देखा कि ढोला अपने प्यार मे सच्चा है, तब उन्होंने अमृत छिड़ककर मारू को जीवित कर दिया। मारू जीवित हुई तो ढोला से पूछने लगी कि ये लकडिया किसलिए जमा की हैं? ढोला ने कहा, 'तुम्हें सांप ने काट लिया था और तुम मर गई थी। सौभाग्य से शिवजी ने तुम्हें जीवित कर दिया है।' इसके बाद ढोला ने वहा से फिर चलने की तैयारी की।

ढोला-मारू का नलवरगढ लौटना

चलता-चलता ढोला नलवरगढ पहुचा और बाग मे जा उतरा। बागवानों ने जाकर राजा को खबर दी, 'महाराज, ढोलाजी पधारे हैं और रानीजी उनके साथ है।' नल राजा ने बागवान को बहुत-सा धन दिया और खूब धूमधाम से राज्य के सारे आदमियों सहित रथ-पालकियों में बैठकर बाग में आये। बाग मे तम्बू ताने गये। उसी में ढोला-मारू को रखा। मारवणि की सास मारू का मुह देखने आई, तथा मारू का रूप निरख बहुत प्रसन्न हुई। सास ने मुंह-दिखाई मे मारू को दस गाव दिये। फिर पडित को बुलाकर महल पधारने के लिए शुभ मुहूर्त पूछा। पडित ने कहा, 'आज ही शुभ मुहूर्त है।' तब नल राजा ने रथ-पालकी, हाथी-घोड़े, ऊट सभी सवारियो को तरह-तरह से सजाया। बाजे वालों को, नाचने वालों को, सभी को बुलाया तथा बड़े धूमधाम से मंगलाचार करते हुए महल पधारे। राज्य के सभी आदमी आकर ढोला से मिले और उनको नजराना भेंट किया। सभी से मिल, कुशल-क्षेम

पूछ, ढोला ने सबको विदा किया और आप मारू के महल में आया। मालवण भी सोलहो श्रृंगार कर मारू के महल में ढोला के पास आई। तब तीनों बाग मे एक ही झूले में बैठकर, खूब प्रसन्न हो, बातचीत करने लगे।

■

समापन

मालवणि ने ढोला से पूछा कि आप रास्ते में किस तरह गये और किस तरह आये सो हमे पूरी बात सुनाइये ? यह सुन ढोला ने रास्ते में घटी सभी घटनाए जाते तथा आते वक्त की मालवण को कह सुनाई। ढोला ने पुगलगढ की तथा अपने सास-ससुर सभी की बहुत प्रशसा की। यह बात मालवण को भली नहीं लगी। उसने मरुधर देश की बुराई की—

ततखण मालवणि कहै सांभल मत सुरग ।
सुगला देस सुहामणा मारू देस विरग ॥

मालवण की यह बात मारू को अच्छी नहीं लगी, इसलिए उसने मालव देश की बुराई करते हुए कहा—

बलती मारवणि कहै मारू देस सुरग ।
बीजा तो सगला भला मालव देस विरग ॥

इन दोनों को इस तरह झगडते देख ढोला ने बीच-बचाव किया और ढोला के समझाने-बुझाने से दोनो का झगडा दूर हुआ।

मारू को ढोला बहुत प्यार करता था। सास-ससुर भी मारू को बहुत चाहते थे। मारू सास-ससुर की बहुत सेवा करती थी और सदा उनकी आज्ञा का पालन करती थी।

अब पिंगल राजा ने मारू का गौना भेजा जिसमे अपार धन तथा हाथी-घोड़े, ऊट, रथ-पालकी तथा विविध प्रकार के अनगिनत आभूषण और नौकर, दास-दासिया आदि थे। साथ में दोनो ढाढी भी आये थे और वे वहीं नलवरगढ में रहने लगे।

आणंद घणा उछाह अति नलवर बाज्या ढोल ।
ससनेही सयणां तणा कलि में रहिया बोल ॥

जीवन पर्यन्त ढोला और मारू में इतना गहरा और अटूट प्रेम रहा कि आज भी उनके आदर्श प्रेम की कथाए राजस्थान के घर-घर में कही-सुनी जाती हैं. उदाहरण के रूप में पेश की जाती है ।



एक प्रसिद्ध प्राचीन पेण्टिंग पर आधारित रेखानुकृति
जिसमें मारू की विदा करवा कर लाते समय
ऊंट पर सवार ढोला-मारू दिखाये गये हैं ।



कथाकार-परिचय

डॉ॰ कृष्णबिहारी सहल

जन्म १९४१ (नवलगढ, राजस्थान) । शिक्षा · एम॰ ए॰, पी-एच॰ डी॰ । सम्पादक · 'तटस्थ' त्रैमासिक, पिलानी, 'वानर' बाल मासिक, जयपुर । हिन्दी प्राध्यापक, गवर्नमेंट कालेज, नीम का थाना (राजस्थान) में । प्रकाशित कृतियां · राम की शक्ति पूजा का काव्य-वैभव, ढोला-मारू रा दूहा : एक विवेचन, राजस्थानी लोक गाथाए, राजस्थानी लोक गाथाए · स्वरूप और विवेचन, लालबहादुर शास्त्री · व्यक्तित्व और विचार, प्रतिनिधि एकांकी, इन्दिरा गांधी : व्यक्तित्व और विचार, महान नेहरू, राजस्थानी लोक कहानियां ।

मुमु पटवा

जन्म-तिथि जुलाई १९४३ । शैक्षणिक योग्यता—साहित्य रत्न, C. Lib.Sc., सम्पादन कला, विशारद। प्रकाशित पुस्तकें शतरज का प्यादा (कहानी सग्रह), उस दिन (उपन्यास) । पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित रचनायें : वातायन, मधुमती,

ज्ञानोदय, नवभारत टाइम्स, साप्ताहिक हिन्दुस्तान आदि। सम्प्रति साप्ताहिक सत्य विचार, बीकानेर के सम्पादक। एक कहानी संग्रह शीघ्र प्रकाश्य।

निरंजनलाल गोयनका

पैत्रिक-स्थान : चूरू (बीकानेर)। जन्म-तिथि : ९ मई १८८६। प्रारम्भिक जीवन में शैक्षणिक असफलताओं के बावजूद, एवं लम्बे काल तक कोयला-उद्योग में रत रहते हुए भी, अपनी व्यक्तिगत रुझान के कारण दर्शन, इतिहास, साहित्य आदि गंभीर विषयों का निरन्तर अध्ययन-मनन किया जिसकी स्पष्ट झलक प्रकाशित ग्रन्थों में देखी जा सकती है। प्रकाशित पुस्तकें 'व्यक्ति और संघर्ष' (कथात्मक संस्मरण), The Inner Call (मौलिक अंग्रेजी कविताएँ)। 'ऋत की धुरी' (विचार-प्रधान निबन्ध-संग्रह) शीघ्र प्रकाश्य है।

शारदा अग्रवाल

अ-परिचय के इस युग में आत्म-परिचय जैसा कुछ लिखना बकवास लगता है। अपने लेखन से कभी संतोष नहीं रहा, इसलिए उसकी चर्चा भी जरूरी नहीं लगती। बाकी सब कुछ वैसा ही जैसा आम होता है, विशेष कुछ भी नहीं। बकवास के तौर पर यह कि जब भी तथाकथित बड़े-बड़े लेखकों को पढा तो अक्सर यही लगा कि यह सब कभी का सोच चुकी हूं, जैसे अज्ञेय, काफ्का, माइकेल मधुसूदन दत्त, स्टीफेन ज्विग, सी० वर्जिल जारजो, ईवान तुर्गनेव और ...और सब।

अमोलकचन्द जांगिड़

जन्म : ११ नवम्बर १९३३। अध्यापन-कार्य १७ वर्ष सूं। राजकीय सैकण्डरी स्कूल, बिसाऊ (राजस्थान) मे सहायक अध्यापक। मा-राजस्थानी सूं प्रेम। कहांणी, रेखाचित्र लिखणे री शौक। काव्यां व लेख, 'वरदा', 'लाडेसर', 'मरुवाणी' आदि पत्रिकावां मे छपता रवै है।

भंवरलाल नाहटा

राजस्थानी साहित्य और भाषा में विशेष अध्ययन व लेखन। अब तक कई शोध-निबन्ध प्रकाशित। अपने अग्रज श्री अगरचन्द नाहटा से साहित्य में प्रेरणा प्राप्त हुई। सम्प्रति व्यवसाय में संलग्न।

बिशन स्वरूप

पूरा नाम : बिशन स्वरूप माथुर। जन्म : १७ अक्तूबर, १९४४। पेशा :

स्थानीय राजकीय उ०मा० यशवन्त विद्यालय में विज्ञान का अध्यापन। प्रकाशन के नाम पर तीन वर्ष की अवधि में ढेर सारी रचनाए छोटी-बडी पत्र-पत्रिकाओ में प्रकाशित। प्रथम कहानी 'अकेले सडक पर', 'गल्प भारती' (कलकत्ता) के जुलाई, ६७ के अक में प्रकाशित हुई थी। एक कहानी-सग्रह के लिए प्रकाशक की तलाश मे हू। कहानी, कविता दोनो विधाओ में विशेष रुचि है। वैसे लिखने के नाम पर सब कुछ लिखता-पढता रहा हूं। आजकल कहानियां ही लिख रहा हू। 'रिजर्व नेचर' होने के कारण बोलता बहुत ही कम हू। स्वार्थी कतई नही हू। लडकी नाम की चीज से डर लगता है, इसलिए अभी तक अविवाहित रहकर मस्ती में हू।

सतीश 'अभागा'

६ सितम्बर सन् १९४६ को अजमेर मे जन्मा और अभी तक जिंदा चला आ रहा हू। शिक्षा के नाम पर मात्र हायर सैकण्डरी कर सका। कुछ दिनो चलचित्र प्रतिनिधि भी रहा, उसी दौरान अशोकजी से मुलाकात हो गई तो जीवन की धारा ही बदल गई। उन्होंने 'पकज' बनाना चाहा, लेकिन 'अभागा' बनकर ही रह गया। निबधों से शुरुआत की, फिर 'अभागा कही का' एक लघु उपन्यास लिख डाला जो अप्रकाशित ही रहा। फिलहाल 'ओरियण्टल पावर केबल्स' में उप-परीक्षक के पद पर नियुक्त हू। अभिनय का भी शौक रखता हू। सोचता हू इस बहाने ही 'कुछ' कर सका तो जीवन सफल हो जायगा, नही तो आम लोगो की तरह मैं भी जला दिया जाऊगा और उडकर बालू के गले मिल जाऊगा।

रानी लक्ष्मीकुमारी चुण्डावत

राजस्थान की सुप्रसिद्ध लेखिका। राजस्थानी लोकगीतो पर विशेष अध्ययन और लेखन। कई पुस्तकें प्रकाशित। सम्प्रति राजस्थान विधान सभा की सदस्य।

महेशकुमार पुरोहित

जन्म · १९४९ की १५ अगस्त को शेखावाटी के लक्ष्मणगढ (सीकर) में। शिक्षा चल रही है। जीवन के अनेक रूप बिखर गये और न जाने क्यो १९६७ में इस कलकत्ता महानगरी मे चला आया। स्कूल, कालेज व अन्य लघु पत्रिकाओ में लिखकर अपने अस्तित्वविहीन रूपो को इकट्ठा करना चाहा। पथ पर बढते जाने का उत्साह है—लक्ष्य मिले या न मिले।

रमा देवी

सस्थाए जिनसे संबद्ध रही . बालाश्रम (१९४८), राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर (१९४९, ५०, ५१ वर्षो मे), बापू विद्यापीठ (करौली), महिला परिषद् (उदयपुर), विकास समिति (उदयपुर) । वर्तमान में जयपुर से प्रकाशित होने वाली 'क्षेत्रज्ञ' त्रैमासिक पत्रिका की सपादिका, बापू विद्यालय, जयपुर की सचालिका एव इंदिरा गाँधी युवक कांग्रेस, जयपुर की अध्यक्षा है । सामाजिक सेवाए : गांधीजी के आदर्शों से प्रभावित होकर दलित-त्राण-कार्य में जुट गई। सामाजिक कुरीतियो, रूढियों और अनावश्यक मान्यताओ से विमुख होकर समाजोद्धार के कार्यों में अग्रसर हुई ।- साहित्यिक अभिरुचि : कहानी, कविता, गद्य-गीत व लेख लिखे । अनेक रचनाए प्रकाशित हुई है । स्वाध्याय अधिक, लेखन कम । विशेष जीवन के शाश्वत मूल्यों के लिए सघर्षशील रहकर जीवन के एक-एक क्षण को राजस्थान की वीरागना की तरह जीया है और जी रही है !

विश्वेश्वर शर्मा

१५ सितम्बर १९३३ को उदयपुर में जन्म । पिता श्री चन्द्रलालजी क्षेत्र के प्रसिद्ध अध्यापक थे । फिर भी कई कारणों से अधिक शिक्षा नही हो पाई। सम्प्रति राजकीय माध्यमिक शाला मे अध्यापन । गुरु-कृपा से काव्य-दीक्षा । सत्संगत एव कठोर अध्ययन से मार्ग खुले । देश को लब्ध प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में कविताए, कहानियां, निबन्ध प्रकाशित होते रहते हैं । राजस्थान शिक्षा विभाग द्वारा 'बिम्ब बिम्ब चांदनी' शीर्षक काव्य-संग्रह अभी हाल ही प्रकाशित हुआ है । दो-तीन कविता-सग्रह, दो तीन कहानी-सग्रह, इतने ही निबंध-सग्रह, एक उपन्यास तथा राजस्थानी गीत-संग्रह अप्रकाशित । निरन्तर लेखन का व्यसन ।

श्रीलाल नथमल जोशी

स० १९७८ री माघ सुदी ७ । कहाणी अर कविता रो सौख इस्कूली पढाई रै दिनां लागग्यो । सन् १९५० मे डिमाई आकार रै ५४ पृष्ठां में हिन्दी कविता 'सक्षिप्त रामायण' छपी । जद राजस्थानी गद्य लिखणो सरू कर्यो तो श्री नरोत्तमदासजी स्वामी री दुरलभ सराहना सुलभ हुई । कविता में विसेस गत भी लखाई कोनी, इण कारण राजस्थानी री गद्य विधा नै झाली । 'आभै पटकी' नांव सूं राजस्थानी उपन्यास अर हास्य-व्यग्य रै इकतीस रेखा-चित्रां रो संकलन छप्यो । 'नृसिंह गिरि-स्तोत्र' राजस्थानी में अर फेर उण रो हिन्दी अनुवाद भी

छप्यो। राजस्थानी रै प्रसिद्ध इटावली विद्वान डा० टसीटोरी र जीवण नै 'घोरां रो घोरी' नाव सू उपन्यास रो रूप दियो, जिको प्रकासीज्यो है। इण रै सिवाय गांधी शताब्दी रै मौकै 'आपणा बापूजी' [गांधीजी री जीवणी साधन अर वाणी] पोथी छपी है। राजस्थानी मे कहाण्यां लिखतां मोकला बरस हुयग्या, पण हाल कोई संग्रह छप्यो कोनी इण कारण राजस्थानी साहित्य बाबत पोथी लिखणियां भी कहाणीकारा में गिणै कोनी। गिणती में आवण खातर अेक संकलण प्रेस में देवण रो विचार है। लोक-कथावां भी लेखणी सू उतारी है। निबन्ध भी लिख्या है। आकाशवाणी जयपुर भी कहाणी, रेखाचित्रां रै अलावा रेडियो-रूपक भी प्रसारित करती रवै। दो उपन्यास 'सरणागत', अर 'एक बीनणी दो बीन' छपण री अडीक में है। केन्द्रीय सरकार कीं सेवा चालू है। राजस्थान भासा प्रचार सभा में मानद परीक्षा-सचिव रो काम भी संभाल राख्यो है।

कमर मेवाड़ी

जन्म · ११ जुलाई १९३९। मार्च १९५९ में प्रथम कहानी 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में प्रकाशित हुई। सम्प्रति चार वर्ष से 'सम्बोधन' त्रैमासिक का संचालन एवं सम्पादन कर रहा हूं।

प्रकाश कुलश्रेष्ठ

जन्म १ दिसम्बर, १९३८ को उत्तर प्रदेश के मैनपुरी जनपद मे। शिक्षा वहीं, बी० ए०, साहित्यरत्न तक। सम्प्रति राजस्थान सरकार के विधि विभाग में अनुवादक हूं। यों, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, कादम्बिनी, नन्दन, बालभारती, धर्मयुग, सारिका, अणिमा और ज्ञानोदय जैसी हिन्दी की सभी नामधारी पत्रिकाओ में छप लिया हू और आकाशवाणी के जयपुर और दिल्ली केन्द्रो से प्रसारित हो लिया हू—कहीं कवि, कहानीकार या अनुवादक के रूप मे और कही रेडियो-रूपान्तरकार या वार्ताकार के रूप मे। जिन्दगी के जिस दौर से हम इन दिनो गुजर रहे हैं, उसे, और सम-सामयिक साहित्य पर पड रहे उसके प्रभाव को, मैं बडे गौर से देख रहा हू और ऐसा मानता हू कि जो कुछ हो रहा है उसे केवल देखते रहना—अवश्य ही, अक्लमन्दी और दिलचस्पी के साथ—भी कम महत्व की बात नहीं है।

हमीदुल्ला खां

जन्म . ५ मार्च, १९३८, जयपुर में। अब तक सौ से अधिक रचनाएं देश की

प्रमुख पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित तथा आकाशवाणी से प्रसारित। कहानियां 'ज्ञानोदय', 'नई कहानिया' आदि साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित। १९६६ में सर्वोत्कृष्ट सृजनात्मक हिन्दी बाल-साहित्य निर्माण के लिये राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत। बालोपयोगी हिन्दी कहानियों का सिन्धी अनुवाद भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय द्वारा पुरस्कृत। बालोपयोगी कहानियों में अनेक नये प्रयोग किये है। प्रचलित से हटकर कुछ नया देने की जुस्तजू है। लेखन के साथ-साथ रगमच मे भी गहरी रुचि है। अनेक नाटकों मे अभिनय तथा निर्देशन किया है। मेरे द्वारा रचित हास्य-व्यग्य एकांकी 'नकाब चढे चेहरे', 'काफी हाउस में', 'घर वंद' आदि सफलतापूर्वक मंचस्थ किये गये है तथा दर्शको द्वारा उन्हें पसन्द किया गया है। सम्प्रति राजस्थान सरकार के सचिवालय की अनुवाद-शाखा में हिन्दी अनुवादक।

रामदेव आचार्य

डूगर कालेज, बीकानेर में अग्रेजी के प्राध्यापक। प्रमुख रूप से कहानियां और आलोचनात्मक निवन्ध लिखते हैं, जो हिन्दी की अनेक पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित होते रहते है। स्वभाव से स्वाभिमानी और विचारों से स्वतत्रचेता एव निर्भीक। कहानियों में व्यंग्य का चुटीलापन गहरे जाकर चोट करता है।

डा० मदन केवलिया

डेरा इस्माइल खां (पाकिस्तान) में जन्म। जन्मभूमि छोड़ने के बाद अभी तक भूमिहीन ही हू। राजकीय डूगर स्नातकोत्तर महाविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक की नौकरी तो मिल गई है, पर अभिलाषाओं की वन्या अभी तक रुकी नहीं। इधर-उधर छपा हू, पर अभी तक 'स्थापित' नही हो पाया। 'पाश्चात्य-साहित्य-शास्त्र' पर एक पुस्तक प्रेस मे है।

शचीन्द्र उपाध्याय

जन्म-स्थान ग्राम अटरू, जिला कोटा, राजस्थान। प्रकाशित पुस्तकें - मिट्टी का सिन्दूर, कावेरी, ठुकराये हुए लोग, आंगन की सीमायें (उपन्यास)। कांपती सिन्दूर रेखायें (कहानी-सग्रह)। अब तक सौ के लगभग रचनायें साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित (प्राय कहानियां)। व्यवसाय - पश्चिम रेलवे, कोटा मडल से सवद्ध।

प्रेमलता रावत

नाम, रूप, आकार ही तो मनुष्य के परिचय का आधार है। वह तो सबके सामने ही है, इसके अलावा क्या दूं अपना परिचय ? बहुत सोचने पर भी समझ नही पा रही हू। किन्तु भाईसाहब (देवड़ाजी) की आज्ञा है, अपना परिचय तुम्हें लिखकर ही देना है। यह 'ही' शब्द मेरे लिए सदैव पूर्णविराम चिह्न-सा रहा है। डांट, प्यार, पुचकार, तिरस्कार सब कुछ सम्पूर्ण फील करते हुए भी इनके आगे झुकने की आदत नही है। किन्तु यह 'ही' की वार्निग··। मां खूब पुचकारती है, डाटती है, फिर समझाती है, पर किसी भी तरह जब बेटी टस-से-मस नही होती, तब दूध का गिलास सामने रख कहती हैं, 'जो भी हो, पीना ही पडेगा।' रोते, बडबडाते, गुस्से में उसको गले से उतार मुक्ति की सांस लेने की यह बचपन की आदत अब भी नहीं जाती। फांसी के फन्दे-सा यह 'ही' मुझे अब भी अवश, असहाय-सा कर देता है।

भाईसाहब कहते है, आज्ञा देते है, डांटते भी हैं, असर भी होता है, पर क्षणिक। फोन करके पूछते है, 'कुछ लिखा ?' स्पष्ट बहानो के साथ ढीठ हँसी के अलावा कुछ उत्तर नहीं रहता। अन्दर-ही-अन्दर शर्म भी महसूस होती है, पर बाहर की बेपर्वाह बेशर्मी उसे जल्दी ही ढक लेती है। किन्तु हठात् जब एक दिन स्पष्ट वार्निग आ गई कि, 'कल सुबह मेरा आदमी तुम्हारे पास आ रहा है, कहानी दे देना' तो एकदम होश उड गया। रातों-रात कलम-कागज खोज-खाजकर कुछ लिखने की कोशिश की, कि बीच में ही नींद आ गई। सुबह आंख खुली नहीं थी ··विदा करके मुक्ति की सास ली थी · कूडे में तो जानी ही है · आधी मेहनत ही बचे ! किन्तु थोडी देर भी यह खुशी नही टिकी, शाम होते-न-होते दूसरी वार्निंग·· कहानी पूरी करनी ही होगी, और उसके बाद फोटो भेजनी ही होगी, और अपना परिचय लिखना ही होगा। अब बताइये, क्या परिचय लिखू···।

अपनी लिखी चीज को सबके बीच में देखती हू तो बहुत पीडा होती है। परिचित-अपरिचित कोई भी जब कहता है, तुम्हारी कहानी पढी थी, बहुत अच्छी लगी आदि·· तो सीने में छुरा लगने जैसा कष्ट होता है जैसे कोई किसी के बहते खून को देखकर कह रहा हो, 'देखो, तुम्हारा खून कितना अच्छा लग रहा है !'

पहली कहानी 'विश्वमित्र' मे छपी थी, पाच-छ साल पहले। मेरे अनजाने मे हीं जिसने यह 'महान्' काम किया था यानी छपवाने का, बहुत खुश तथा गद्गद् थे। लेखिका का पहला नामकरण भी उन्होंने ही किया, किन्तु प्रत्युत्तर में

उन्हें जो ताड़ना मिली उसके लिए वे आज तक अपने-आपको अपराधी समझते हैं। और सच कहूं तो शायद मैं कभी उन्हें माफ नहीं कर सकूं। अपनी बुर्केवाली पर्दानशीन बीवी को अचानक सबके बीच बेपर्दा पाकर शौहर को जो गुस्सा, दुख और ग्लानि होती है वही मैंने उस समय महसूस किया था।

एकदम अबोध थी, तब से ही कविता लिखने की आदत पड़ गयी थी, किन्तु जाने कब यह कहानियों में बदल गई। कुछ समझ पाने योग्य हुई तब तक तो बहुत-सी कहानियां अपने पास इकट्ठी पाईं—अधूरी-अधूरी। अब लिखने की आदत नहीं रह गई, मजबूरी रह गई। मजबूरी ही कभी कुछ लिखा लेती है, वर्ना भरसक लिखने से कतराती ही हूं, और लिखने के बाद छपने के नाम पर तो बहुत-बहुत ...भाईसाहब से प्रार्थना करती हू तो कहते हैं, 'इस लड़की के दिमाग में भूसा भरा पड़ा है।' भूसे भरे दिमाग से निकली किसी भी चीज को कोई कहां तक सहन कर सकेगा, यह विचार ही मेरे मन में 'अणिमा' व 'अणिमा' के पाठकों के प्रति सहानुभूति और एक अपराधी भाव-सा पैदा करता है। मां के घर में सबसे पहली और इकलौती लड़की होने के कारण और सास के घर में सबसे छोटी बहू होने के कारण ममता व लाड की हलकी-हलकी फुहारों के बीच ही जीवन बीत रहा है। दु:ख की कड़ी धूप कैसी होती है, अभी तक पहचान नहीं पाई हूं। प्रकृति के सारे गुणों को, विभिन्न रंगों को समझे बिना उनको अंकित करने की स्पर्धा सत्य ही बेवकूफीपूर्ण है। गहरे पानी में डूबने पर एक सांस लेने के लिए जैसे हम छटपटाने लगते हैं वैसी ही छटपटाहट कुछ लिख डालने के लिए मन में उभरे तभी वास्तविक सृजन होता है। यह तो उथले पानी मे डूबने-उतराने का तमाशा हो रहा है। या फिर पानी में कूदने की कोशिश का प्रयास मात्र जिसके लिए कि स्नेहीजन सदैव डाट-डांटकर उत्साहित करते रहते हैं। इस बार दो बडे भाइयों की स्पष्ट वार्निंग ने जबरन आपलोगों के बीच लाकर खड़ा कर दिया है।...

अशोककुमार माथुर

उम्र २३ वर्ष। जन्म-स्थान : अलवर (राजस्थान)। पिता डाक्टर हैं। शिक्षा : बी० एस-सी० १९६८ में किया। अब हिन्दी विभाग के कार्यालय में कार्य। लगभग १५० कविताएं एवं २० कहानियां लिखी हैं। 'सूखी धरती' के नाम से ही एक इसी प्रकार का (अकाल से सम्बन्धित) उपन्यास भी लिख रहा हू। कविता करना मेरा शौक नहीं, मजबूरी है। ऐसे ही जैसे—लिखना भी, खाना भी, पिक्चर देखना भी, पढ़ना भी ..।

हरमन चौहान

जन्म : ८-६-१९४२ । शिक्षा : एम० ए० (हिन्दी), साहित्यरत्न । प्रकाशन : अ-बोधता (हिन्दी अखण्ड काव्य), जोधपुर के वर्तमान कवि—स० (कविता सग्रह), 'धर्मयुग' से लेकर राजस्थान के साप्ताहिको तक में प्रकाशित हुए हैं । अप्रकाशित ग्रन्थ घोरा छितरी चांदणी (राज० कहानी सग्रह), ओय घन (उपन्यास राजस्थानी में), उडीकू मेही पढ (राज० कविता सग्रह) । हिन्दी तथा राजस्थानी में समान रूप से लिखते हैं ।

पुष्पा देवड़ा

१९४५ में रानीगज में जन्म । बचपन से ही पढने-लिखने का शौक रहा, लेकिन पारिवारिक सहयोग न मिलने के कारण कोई फल नहीं निकला । शादी के बाद अपनी पढने की रुचि तथा उसके महत्व को समझने का मौका मिला । देवडाजी द्वारा सम्पादित 'ज्ञानोदय' और 'अणिमा' के विशेषाकों में बहुत-सी नवोदित लेखिकाओं के परिचय पढने का मौका मिला । प्राय. सभी की आम शिकायत यही रहती कि घरवालो के विरोध (खासकर पति) के कारण उनका लिखना हो नहीं पाता, और उनकी लिखने की रुचि सुषुप्त हो जाती है । पर मेरा यह सौभाग्य रहा है कि यद्यपि घरेलू वातावरण अन्य सभी से बहुत-कुछ मिलता-जुलता था पर देवडाजी के सहयोगवश मैं अपने इस शौक में पूरी तरह से जी सकने का विश्वास ले बैठी । आजकल जब कि अच्छे-से-अच्छे लेखक-पति-पत्नी भी लिखने के मामले में आपस में असहयोगी सिद्ध होते हैं वहा मुझे वातावरण तथा सहयोग उम्मीद से बढकर प्राप्त होता है । फिर मैंने तो अभी मौलिक लेखन शुरू ही कहा किया ? फिर भी यह आश्वासन हमेशा मिलता रहता है कि इसी तरह धीरे-धीरे मौलिक रूप में भी लिख सकोगी और मैंने बगला से हिन्दी अनुवाद करना शुरू कर दिया । जन्म से आज तक बगाल मे रही अत. बगला मेरे लिए बहुत सरल भाषा है ।

सर्वप्रथम मैंने 'अजितकृष्ण वसु' लिखित 'जादू कहानी' पुस्तक की सभी कहानियो का अनुवाद किया जो धर्मयुग में लगातार एक सिरीज के रूप मे प्रकाशित हो चुकी हैं । उस समय भारतीजी ने लिखा था कि घर-गृहस्थी के कामो के अलावा आपकी साहित्यिक रुचि भी रखने की मैं प्रशसा करता हूं । इसके बाद तो मैंने कई उपन्यास जैसे 'तनिमा जातक', 'नारी और नियति', 'नायिका', 'पटरानी', 'कचनमाला' अनुवाद किये जो सभी राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली से प्रकाशित हुए

हैं। इसके अलावा, आठ-दस लम्बी कहानियां भी अनुवाद की जो 'अणिमा' के विभिन्न विशेपांको में प्रकाशित हुईं। आजकल राजपाल के ही लिए श्री ताराशंकर वन्द्योपाध्याय के उपन्यास 'पांच पुतलियां' का अनुवाद कर रही हू।

अब उन आश्वासनो का महत्व मुझे भी महसूस होने लगा है, क्योंकि मुझे भी अनुभव हो रहा है कि मैं कुछ लिखने बैठू तो वह उतना बुरा नहीं लिखा जायेगा। यो तो आजकल जो कहानी-कविताएं लिखी जा रही है वे सामने ही है। अकहानी और अकविता के नाम पर जो कुछ न लिखा जाय वही थोडा है। वैसा कुछ लिखने के पक्ष मे मैं विलकुल नहीं हू। पर लिखूगी वह कैसा होगा यह तो लिखा जाने के वाद ही पता लगेगा।

'ढोला मारु' तथा 'सांई री पलक में खलक' दो राजस्थानी लोककथाए 'धर्मयुग' के लिये ही भेजी थीं, जिनमें से दूसरी वाली तो तभी प्रकाशित हो गई थी पर 'ढोला मारू' के लिये भारतीजी खास रगीन चित्र वनवाना चाहते थे अत इसके प्रकाशन के लिए कुछ समय लगना आवश्यक था; और आखिर वे चित्र बने भी और ऐसे बने कि जितनी प्रशंसा की जाय, थोडी है। पर चित्र तथा लोककथा खेद प्रकट करते एक पत्र सहित इसलिये वापस आ गयी कि तब तक 'धर्मयुग' की सामग्री-योजना मे परिवर्त्तन हो गया था। अव जव 'अणिमा' के 'राजस्थान काव्य, कथा, उपन्यास विशेपांक' की योजना बनी तो इस लोककथा का उपयोग यहां उपयुक्त लगा।

